मेरी यूरोप यात्रा

देश-दर्शन—२

मेरी यूरोप यात्रा

त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन

प्रकाशक

साहित्य-सेवक-संघ

छपरा

मुद्रक
श्यामसुन्दर श्रीवास्तव
कायस्थ पाठशाला प्रेस
प्रयाग

प्रकाशक
साहित्य-सेवक-संघ
छपरा

विषय-सूची

१

कोलम्बो से प्रस्थान

पाँच जुलाईको (१९३२ ई०) मैं यूरोपके लिये रवाना हो जाऊँगा, इसका ख्याल मुझे एक वर्ष पहले क्या, एक मास पहले भी नहीं था। भदन्त आनन्दने बौद्ध धर्मके प्रचारके लिये लन्दन जाना स्वीकारकर अपनी स्यामकी यात्रा स्थगित कर दी। उनके साथ किसी औरके जानेकी जरूरत थी। पहले किसी दूसरेको ही भेजनेका विचार था। कोई अनुकूल आदमी मिल गया होता, तो मुझे इतनी जल्दी इस यात्राको न करना पड़ता। चलनेकी सलाह ठीक होजानेपर, पासपोर्टका मिलना सहज न था। एक बार इनकार भी हो गया। यही कारण था, जो मैं अपनी यात्राके विचारसे अपने मित्रोंको भी न सूचित कर सका। आचार्य नरेन्द्र-देवजीने तो किसीसे सुनकर इसे अफवाह समझा।

२१ जूनको यात्राकी बात पक्की हो गयी। फ्रेंच जहाजसे जाना पहले ही निश्चय कर लिया था। लोग ३० जूनको ही भेज

देना चाहते थे; किन्तु मुझे अपने चीनी मित्र श्री वाङ्-मो-लम्के साथ थोड़ा लिखनेका काम पूरा करना था। इसलिये ५ जुलाईको मेसाजेरी-मारीतीम् कम्पनीके जहाज दा—र्तन्-नॉ (D' Artagnan) से जाना निश्चय हुआ। इतनी बड़ी यात्रा न मैंने ही कभी की थी, न मेरे मित्र भदन्त आनन्दने ही। सीलोनमे इंगलैंडके यात्रियोंकी कमी नहीं है। धार्मिक कठिनाई तो यहाँ छू तक नहीं गयी है, जिससे कि, खारे पानीके स्पर्शसे धर्म नमककी पुतलीकी तरह, गल जाता हो; ऊपरसे प्रवासी अंग्रेजोंकी भाँति सीलोनके शिक्षित इंगलैंडको "घर" (Home) कहते हैं। उन लोगोंसे यात्राके सामान आदिके बारेमें कुछ पूछ-ताछ की; किन्तु हमारी समस्याएँ बिलकुल ही अलग थीं। एक तो हम पचीस सौ वर्ष पुराने भारतीय भिक्षुओंके वेषमें यूरोपकी यात्रा करने जा रहे थे, जिसमें कुर्ता-धोती भी नहीं पहने जा सकते, कोट, पतलून, हैटकी तो बात ही अलग। दूसरे हमारे साथी भिक्षु आनन्द 'घासाहारी' हैं; मांस-मछलीकी तो बात ही क्या, अण्डेका (जो कि दूधका छोटा भाई है और जिसपर गीताके "आहारः सात्त्विकाः प्रियाः" वाले सातों लक्षण घट सकते हैं) भी नाम नहीं सुनना चाहते! अस्तु। हमने पुस्तक-पत्रेके साथ कुछ जाड़ेके लिये गर्म चीवर (भिक्षुका लम्बा-चौड़ा चद्दर-सा कपड़ा) तैयार कराया। आनन्द समुद्र-यात्रामे बड़े बहादुर हैं, यह मैंने तभी जाना था, जब कि, भारत और लंकाकी दो घंटेकी समुद्र-यात्रामें भी वह कै किये बिना नहीं रहे! यहाँ तो भारतीय महासागर था, जिसपर मान-

अफ्रीका—सुमाली लोग
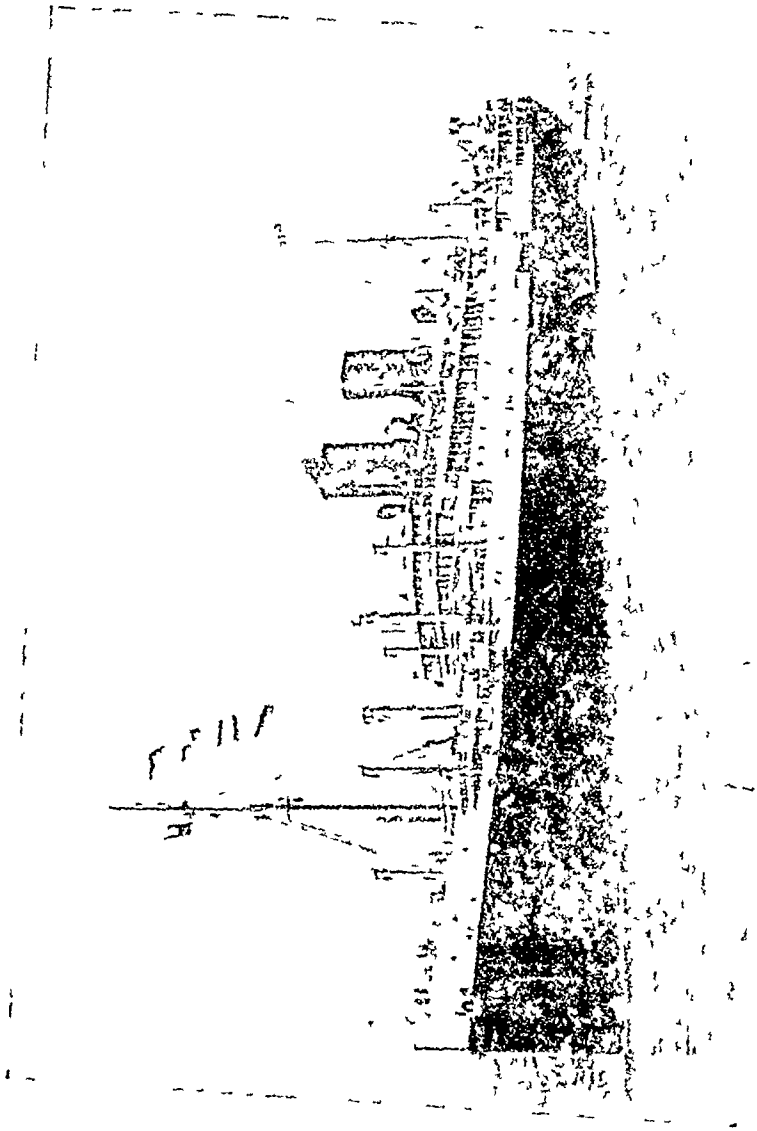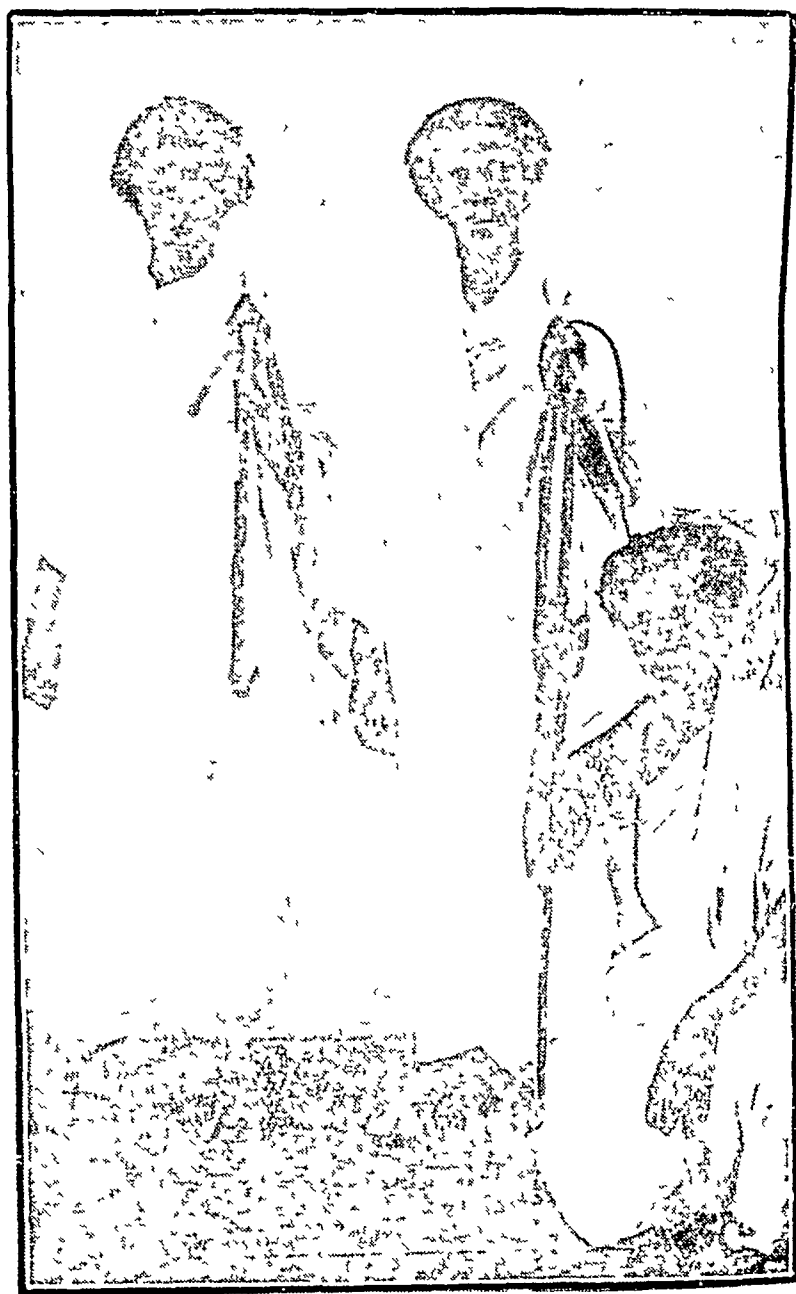
सूनका समय, इसलिये मैंने कई मित्रोंको नीबू और नमककी फरमाइश दे रखी थी; यद्यपि मेरे मित्र आनन्द इसे प्रतिष्ठामें बट्टा लगाना समझते थे! मेरी चली होती, तो कुछ केला, सेव आदि भी रख लिये होते।

राम-राम करके पाँच जुलाईका दिन भी आ पहुँचा। पाँच बजे हम लोग मोटर द्वारा विद्यालंकार-विहारसे कोलम्बो बन्दरगाह लाये गये। महाबोधि-सभाके ट्रस्टी, हमारे उपाध्याय परम मान्य श्री धर्मानन्द नायक महास्थविर, बीससे ऊपर भिक्षु तथा बहुतसे गृहस्थ, बिदा करनेके लिये आये।

बम्बई और कराचीकी भाँति कोलम्बोमें जहाज किनारेतक नहीं जा सकता, इसलिये हमें छोटी मोटर-नौकासे जहाजपर जाना था। हम दोनोंने अभिवादन-पूर्वक अपने उपाध्यायसे बिदा ली। कुछ भिक्षु ट्रस्टी और कितने ही गृहस्थ हमारे साथ जहाजपर आये। यों तो एकाध बार पहले भी जहाजके भीतर जाकर देखा था, किन्तु अब तो १८, १९ दिन उसीमे निवास करना था। बड़ा तअज्जुब-सा मालूम हुआ। विशेपकर तब जब कि दा—तीनसौके सैकड़ों यूरोपीय यात्रियोंने हमारी पीले कपड़ोंवाली सिरघुटी भिक्षु-मण्डलीको घूरकर देखना शुरू किया! जब हम सीढ़ीपरसे उतरकर अपने केबिनकी ओर जाने-आने लगे, तब आँगनमे बैठे फ्रांसीसी नौसैनिकोंने ताली बजाकर और ठहाका मारकर स्वागत किया! हम तीसरी श्रेणीके यात्री थे। जापानी जहाजोंमे

तीसरे दर्जेमें ए, बी, दो श्रेणियाँ होती हैं; किन्तु फ्रेंच जहाजोंमें एक ही। साधारण जहाजमें कोलम्बोसे मार्सेलका किराया २२ या २३ पौंड है, किन्तु दा—र्तन्न-नाँ प्रथम श्रेणीका, १५ हजार टनसे ऊपरका, जहाज है; इसलिये किराया २७ पौंड या ३६०) रुपये देना पड़ा। हम लोग धर्मप्रचारक थे; इसलिये कम्पनीने २०) रुपये सैकड़ा रियाअत की। इस प्रकार ७२) रुपयेकी बचत हुई।

हम लोगोंका केबिन पहले डेकपर था। बीचमें होनेसे रोशनी हवाके आनेका कोई रास्ता न था। दीवारसे लगी नीचे-ऊपर दो बर्थें (सोनेकी चारपाई-सी) थीं। ऊपरकी बर्थके पैरकी तरफ एक बिजलीका पंखा था; दरवाजेके पास एक बिजली बत्ती। नीचे दीवारसे लगकर मीठे पानीकी कल तथा अचल चीनीका पात्र था, जिसकी बगलमें भित्तिबद्ध मुंदरियोंमे दो शीशेके ग्लास तथा एक शीशे की सुराही थी। पंखा देखकर जानमें जान आयी; नहीं तो इस अग्निकुण्डमें खौलना आसान काम न था। पीछे हमें मालूम हुआ कि, हम लोगोंकी बर्थें बी और सी नम्बरकी है। ए नम्बरवाली बर्थें सबसे अच्छी होती हैं, क्योंकि उनमें समुद्रकी तरफ बड़े बड़े गोल छिद्र होते है, जिनसे हवा और रोशनी, दोनों आती रहती हैं। टिकट लेते वक्त कोशिश की गयी होती, तो मिल जाना भी बहुत सम्भव था।

जहाज ग्यारह बजे छूटनेवाला था; इसलिये एक घंटे बाद लोग चले गये। नौ-दस बजे और कुछ लोग आये। सबसे पीछे

हमारे गुजराती मित्र माणिकलाल पाटील, उनके भाई तथा कुछ और गुजराती सज्जन आये। माणिकलालजी जौहरी हैं। उनकी एक दूकान पेरिस (Paris) में भी है। उनके भाई तो निरामिष भोजनोंकी एक तालिका ही बनाकर आनन्दजीके लिये लाये थे। हमने पाखाना, पेशाबखाना और स्नानागार देख लिया। स्टीवर्ड और नौकरको दस और पाँच शिलिंग इनाम दिया गया। वे लोग चले गये और हम लेटकर गप्प मारने लगे। ग्यारह बजे, जहाजने सीटी दी। जहाज चलने लगा। हम लोग सो गये।

सवेरे नींद टूटी, तो देखा, जहाज ऊँचे-नीचे हो रहा है, जिसके साथ हमारा दिल भी, सावनके ऊँचे झूलेपर बैठे नौसिखियेके मनकी तरह, उत्तुङ्ग शिखरसे अतल खातकी ओर गिर रहा था। जब जहाज ऊँची लहरोंपर उठता है, तब सिरमे थोड़ा-सा चक्कर आता है; किन्तु जिस समय लहर नीचेसे निकल जाती है, उस समय जहाजके पतनके साथ दिल एक दम गिर ही नहीं पड़ता; बल्कि मालूम होता है, एक ठंढी हवाका झोंका कलेजेके एक-एक छिद्रमें, जल्दीसे, घुस गया। थोड़ी देर तो बिस्तरेपर पड़े रहे। उतरकर डॉवाडोल जहाजमे लड़खड़ाते बाहर आकर देखा, तो मालूम हुआ, सवेरा हो गया। पाखाने गये। यहाँ पानीकी जगह कागजका व्यवहार था। यह भी सीखना ही था। दाँत की लेईसे दाँतुन कर जब कुल्ला करने लगे, तब एक बार कै-सी मालूम हुई। लेकिन अठारह घण्टे बाद पेटमें रखा ही क्या था? आनन्द-जीकी हालत तो कुछ न पूछिये। सिरमें चक्कर आ रहा था; जी

मिचला रहा था, किसी तरह मनपर जोर देकर उन्होने हाथ-मुँह धोये। खूब कै आने लगी। लेकिन पेटमें कुछ न था। शामको ही हमने स्टीवर्डसे कह दिया था कि, हमारा खाना केबिनमें आना चाहिये। तदनुसार हमारे मुँह धोनेसे पूर्वही रोटियांके आठ-दस टुकड़े, दो प्याला काफी और मक्खन पहुँच गये। दोनों ने बैठकर किसी तरह उन्हे खतम किया। हम तो जाकर अपने बिस्तरेपर पड़ रहे और आनन्दजीको उठते-उठते कै आ गयी; सब खाया निकल गया। मानसूनका दिन था। समुद्र बड़ा ही चञ्चल था! हमारे सहयात्रियोमे एक अंग्रेज लेफ्टिनेट थे। उनका तो फतवा था कि, ३५ वर्षमें ऐसा चञ्चल समुद्र कभी नहीं पाया। यह तो साफ था कि, लड़कों और नाविकोको छोड़कर यात्रियो में सभी बुरी अवस्थामें थे। मैंने बिस्तरेपर जाकर देखा कि, यदि जहाजके ऊपर उठनेके साथ साँससे पेटको भरा जाय और उतरनेके साथ धीरे-धीरे खाली किया जाय, तो कुछ आराम मिलता है। मैंने अपना यह आविष्कार आनन्दजीको भी बताया। साथ ही साथमें आये नीबुओं और अदरखके टुकड़ोंका व्यवहार शुरू कर दिया। आनन्दजीको तो नीबू चाटना भी जबर मालूम पड़ता था!

समुद्रकी यही हालत एक सप्ताहतक रही। मुझे न कै हुई, न खानेमे कोई अरुचि। लोग कहते थे, आपको समुद्रयात्राका बहुत अभ्यास है। मैंने कहा "नहीं, यह पहली ही यात्रा है।" लोग आश्चर्य करते थे! दर असल मेरे लिये तिब्बतकी सर्दी, हिमालयकी चढ़ाई और इस उत्तरङ्गित समुद्रकी यात्रा एक-सी

ही मालूम हुई। हाँ, पहले दिन अपरिचित होनेके कारण कुछ अजीव-सा मालूम हुआ था। दोपहरका खाना फिर हमारे कैबिन-में ही आया। आनन्दजीको भूख ही न थी, कहनेपर आमके दो चार टुकड़े खाये। मैंने तो गोश्त, अण्डा, मछली, रोटी, मक्खन, जो कुछ आया था, बेखटके पेट भर खाया। पश्चात् थोड़ी देर विस्तरेपर पड़ रहा। इसके बाद चीनी प्रोफेसर ल्यूके पास गया। वेचारे सवेरेसे ही विस्तरेपर पड़े थे। यह सज्जन लड़कपनमे ही विद्याभ्यासके लिये अमेरिका भेज दिये गये थे। इधर कई वर्षों-तक मुकदन (मंचूरिया) के चीनी विश्वविद्यालयमें इतिहास और संस्कृतके अध्यापक थे। एक साल पूर्व, जापानने मंचूरियापर पूर्ण-रूपेण कब्जा जमा लिया, तब यह विश्वविद्यालय भी बन्द हो गया। प्रोफेसर ल्यु इधर अन्ताराष्ट्रीय संघ द्वारा नियुक्त मंचूरिया कमीशनके चीनी सदस्यके विशेषज्ञ परामर्शदाता रहे। अब यूरोप और अमेरिकाकी यात्रापर निकले है। शामको मैंने बड़े आग्रहपूर्वक ताजी नारंगीका रस पीनेको दिया; साथ ही चूसनेके लिये अदरख और नीबू भी।

तीसरे दिनसे मैंने अपने जहाज दा—र्तन्य-नॉकी खबर लेनी शुरू की। यह फ्रांसीसी जहाजी कम्पनी मेसाजिरी-मारी-तीम्के ए श्रेणीके बड़े जहाजोंमें है। इसकी लम्बाई ५४१ फीट, चौड़ाई ६५ फीट, वजन १५, १०५ टन और इंजिन दस हजार घोड़ोंकी ताकतका है। यात्रियोंके रहनेके बी, सी, डी, ई, चार तल हैं, जिनमें बी तल सिर्फ तीसरे दर्जेके यात्रियोंके लिये है और डी, ई

सिर्फ पहले दर्जेके लिये। सी तलपर पहले और दूसरे, दोनों दर्जेके यात्री रहते हैं। प्रथम दर्जेके केबिन बड़े हैं। सबमे बाहरकी ओर छिद्र हैं! इस लिये रोशनी और हवा आती है। दूसरे दर्जेवालोकी दशा तीसरे दर्जेवालोसे बहुत अच्छी नहीं है, जहाँतक हवा और दिनकी रोशनीका सम्बन्ध है। हाँ, तीसरे दर्जेवालोके लिये एक ही हाल है, जिसमे खाना, सिगरेट पीना, बात चीत करना, सब होता है। दूसरे दर्जेवालोको इनके लिये तीन अलग-अलग कमरे है।

खानेके चार समय है। ६ बजे चाय, रोटी और मक्खन, ११ बजे मध्याह्न-भोजन, जिसमें दो तीन तरहका मांस, मछली, एक फल, एकाध तरकारी और रोटी है। काफी-चाय और पीने-वालोंको आधी बोतल लाल शराब भी मिलती है। चार बजे फिर सबेरे जैसा। ६ बजे शामके भोजनमें दोपहरसे कुछ विशेषता रहती है। हम लोग दोपहरके बाद खाना तो खा नहीं सकते थे, हाँ, कभी-कभी बिना दूधकी चाय पीने जरूर चले जाते थे। जहाजमे पानी खूब ठंढा मिलता था, यह सबसे आनन्दकी बात थी।

१२ जुलाईको हमने अफ्रीकाका किनारा देखा। छोटे-छोटे नंगे पहाड़, नीचे किनारे पर मछुओंकी छोटी नावे। मालूम हुआ, यह सुमाली-तट है, जो इटली के अधीन है। अब जहाज उतना हिलता-डोलता न था। लोग अब अपनी हालतमे आ रहे थे। आनन्दजी तो इन दिनों बराबर ऊपरी छतपर, जावाके चौथे दर्जेके एक मुसलमान यात्रीके पास, जाकर पड़े रहते थे। ऊपर हवा तेज चलती थी; इसलिये केबिनसे वह अच्छा था। जावी

परिवर्तन

मेरे चचा (स्व० श्री वैजनाथ उपाध्याय) बचपन से ही मुझे बहुत चाहते थे। वे साहसी, बुद्धिमान, तेजतर्रार, त्यागी, सेवाभावी थे। शासकों के व मु शियो के गुण भी उनमे खूब थे। १२ साल की उम्र मे मुझे वे अपने पास[1] लेगये। वहां जाते ही मुझमे एकाएक बिना किसीके कहे-सुने एक अजीब परिवर्तन हुआ। यह भाव मन मे पैदा हुआ—अब मा नही, काकी के पास रहना है। यहां अपना बंडपन (शरारत) नही चलेगा। काका साहब बड़ी उमग से अपने को यहा लाये हैं। मेरे उपद्रवो से उन्हे दुःख व कष्ट न हो। काकी को परेशान न होना पड़े। काका साहब यहां बड़े आदमी हैं। उनका भतीजा अगर उपद्रव करे तो यहां के लोग क्या कहेगे? मुझे उन्हे इसकी शिकायत का मौका न देना चाहिए। जब मैं सोचता हूँ, तो मुझे आश्चर्य होता है कि यह समझदारी और जिम्मेदारी के भाव मेरे मनमे कहां से आगये। इनके मूल को खोज करता हूँ तो ऐसा मालूम होता है कि काका व काकी को अपने कारण कष्ट न पहुँचे, उनकी बुराई-बदनामी न हो, यह अहिंसा की भावना इसमे थी। इस गुप्त या सुप्त भावना ने मेरे अन्दर यह परिवर्तन या बुद्धिमानी पैदा की। बाद मे तो मुझे यह स्पष्ट अनुभव हुआ कि अहिसा या सत्य या किसी भी सद्भाव की साधना से बुद्धि बढ़े बिना नही रह सकती। नई-नई व अद्भुत बाते सूझे बिना, एकाएक छोटे या बड़े परिवर्तन हुए बिना रह नही सकते।

काकी मेरी बडी स्नेहमयी थी। लेकिन काका साहब सदैव यह ख्याल रखते थे कि काकी मेरे साथ कोई दुर्व्यवहार न करे। जरा खटका होते ही वे उनके साथ कड़ाई से पेश आते। यह मुझे अच्छा नहीं लगता।

१ इस समय वे बरमंडल (जागीर सरदार अटार साहब) मालवा ग्वालियर राज्य मे वहिवाटदार (तहसीलदार) थे।

मै बेचैन हो उठता कि मेरी बदौलत काकी पर सख्ती हुई। यह डर होने लगता कि इससे कही काकी के स्नेह मे फर्क न आजाय। वह यह न समझने लगे कि यह कहा की आफत मेरे पीछे लग गई। काका साहब भी आगे जाकर यह न महसूस करने लगे कि हरि[1] को लाकर एक झंझट मे पड़ गया। इस कठिनाई मे से ईश्वर ने मुझे एक रास्ता सुझाया। काका साहब तो अपने हैं। उनका प्यार तो मेरे लिए सहज है। काकी पराई बेटी है। उनका प्यार मेरे पात्र बने रहने से ही मिल व टिक सकेगा। मै उनके प्यार व वात्सल्य का अधिकारी कैसे बना रहूँ? उनकी सेवा करके, उनका होकर। काका साहब को भले ही एक बार नाराज होने का मौका मिले, पर काकी को नही। काका साहब जब काकी को झिडके, तो मुझे काकी की तरफदारी करनी चाहिए, उनका बचाव करना चाहिए।

बस, मैं बीच-बीच मे काका साहब से, ऐसे अवसरो पर कहने लगा—आप बिला वजह काकी को क्यो डाटते है ? इसमे तो मेरा ही कुसूर था, इसकी सज़ा तो मुझे मिलनी चाहिए। कई बार मैं झूठ-मूठ भी बातो को अपने ऊपर लेलिया करता था। अब तो काकी का प्रेम व विश्वास इतना बढगया कि कोई काम उनके हाथ से बिगड जाता और काका साहब जवाब तलब करते तो वे मेरा नाम ले देती थीं। काका साहब मुझे कभी-कभी तेज स्वर मे सवाल करने के अलावा कभी नही डांटते थे। वैसे गुस्सा उनका तेज था; लेकिन मेरे प्रति उनकी मधुरता के मूल मे भी यह भाव हो तो आश्चर्य नही कि यह अपना लडका नही, भतीजा है। यह दुलार व प्यार की चाह रखता है, सख्तियो की नही। लडका सख्ती को समझ सकता है, भतीजा नही। लेकिन यहा बात उलटी थी। मेरे खातिर काकी या मेरे भाई (काका के लड़के) पर सख्ती होती तो मुझे बुरा लगता—हालाँकि उनकी इस दूरदेशी से काका साहब के प्रति मेरा आदर व पूज्य भाव बढता ही गया। मेरे भाई को अवसर और कभी-कभी,

१-मेरे मामा व काका मुझे 'हरि' कहा करते थे, आगे चलकर यही नाम—हरिभाऊ—प्रचलित होगया।

मेरी काकी को भी, काका साहब का यह पक्षपात अखरता था। मुझे तो ऐसा ही लगता है कि काका साहब का व्यवहार शुद्ध अहिंसा-भाव से प्रेरित था। वे अहिंसा-सिद्धान्त के कायल हों, अहिंसा-नीति पर जान-बूझ कर चलते हो, सो बात नही। उनके अनजाने भी उनका यह रुख अहिंसा-प्रेरित ही दिखाई देता है।

अहिंसा के मूल मे भिन्नता का, द्वैत का भाव है; सत्य मे अभिन्नता का, अद्वैत का। दूसरे की अपेक्षा मे व अपेक्षा से ही हमारा व्यवहार हिंसा या अहिंसा का समझा जा सकता है। कोई दूसरा नहीं है, हमी हम हैं, तो वहा सब शुद्ध नग्न सत्य, अभेद है। सत्य की नग्नता अत-एव वीभत्सता पर अहिंसा, सभ्यता व सौजन्य का वस्त्रावरण है। सत्य की प्रखरता अतः असह्यता पर अहिंसा मधुरता व मृदुलता का लेप, अनुपान है। साधारणतः मनुष्य भतीजे से उतना अभेद अनुभव नहीं करता जितना सगे बेटे से, व जितना खुद अपने से अभेद-भाव समझता है, इतना सगे बेटे से भी नहीं। इसलिए वह खुद अपने तई जितनी नग्नता, प्रखरता, कठोरता बरत सकता है, उतनी अपने खास बेटे के प्रति भी नहीं। सत्य का ज्ञान या अनुभव जैसा मुझे है या होता है ठीक वैसा ही, बिल्कुल नग्न, मुझे उसे दूसरे को कराने की हिम्मत नही होती—समाज की दृष्टि से यह सदा आवश्यक व हितकर भी नही है—क्योंकि संभव है दूसरा उसे उसी रूप मे न देख सके या समझ सके। मेरे अपने सस्कार अलग हैं, उसके अलग। यह भेद मेरे व उसके सत्य-व्यवहार मे एक मर्यादा उत्पन्न कर देता है और वह अहिंसा है। मैं अपने सत्य को दूसरे तक अहिंसा द्वारा ही पहुँचा कर कृतकार्य हो सकता हूँ—यदि कृतकार्यता की कुछ आशा हो सकती हैं तो इसी तरीके से। सत्य का स्थान क्यो अलक्ष्य है, अहिंसा का स्थान उसके मुकाबिले मे क्यो दूसरा है, यह इससे अच्छी तरह समझ मे आजाता है। जब तक हमारे मनमे भेद-भाव है तब तक अहिंसा व सत्य का हमारे लिए समान मूल्य है, जब भेद-भावो से हम परे होजाते हैं, या होने लगते है, तब हम अपने लिए

यह भाषा बोल सकते है—सत्य का नम्बर पहला, अहिंसा का दूसरा।

मै बरमण्डल मे तीन साल रहा। इसके बाद जब मैं भौरासा गया तो वहा वाले आश्चर्य करने लगे कि यह कितना शान्त समझदार होगया। कहने लगे—वैजनाथ ने इसका जीवन सुधार दिया। काका साहब ने सचमुच मेरा जीवन यहा बनाना आरम्भ किया था। राष्ट्रीयता, देश-भक्ति समाज-सेवा की भावना मेरे मन मे यहीं अंकित हुई। मानवी सद्गुणो के बीज के रूप मे जो भावनाए भौरासा मे छिट-फुट बिखरती दीखती थी, वे उनकी देख-भाल व सगोपन मे स्थिरता व वृद्धि पाई एव उन्हे सुव्य-वस्थित रूप मिला। उनके पास उन दिनो मराठी के चार अखबार आते थे—'केसरी', 'काल' 'भाला', 'हिन्दू-पंच'। चारो उस समय उग्र राष्ट्रीय विचारो के प्रतिनिधि व प्रतिपादक थे। मेरे जाने के बाद इनमे'हिंदीकेसरी' व 'भारतमित्र' और जोड़े गए। पुस्तको का खासा भण्डार उनके पास था। चाचाजी अच्छी पुस्तके पढ़ाते, अखबारो का मजमून समझाते; 'लाल-बाल पाल'[1] त्रिमूर्ति नेताओ का गुण व प्रभाव बताते। रात मे गश्त के लिए सिपाही की वर्दी मे मुझे साथ लेजाते; डरावनी जगहो पर मुझे अकेले गश्त करने भेजते। कहते—खतरे व मृत्यु से क्या डरना ! ईश्वर को संकट मे डालना या मौत के मुह मे ढकेलना मजूर है तो वह होकर रहेगा—घर बैठे भी संकट या मौत आजायगी। जगलो में, पहाड़ो पर, बारिश मे साथ ले जाते। तीर व बन्दूक चलाना सिखलवाया। अपनी जाति (औदुम्बर) की अवनत दशा का बडी करुणा के साथ जिक्र करते। एक बार उन्होने मुझे नीचे लिखी नसीहते लिखकर दी—

भूलने योग्य बातें—

१—दूसरो द्वारा अपने साथ कीगई बुराई।

२—अपने द्वारा दूसरो के साथ की गई भलाई।

१—लाल—लाला लाजपतराय, बाल—बाल गंगाधर तिलक, पाल—विपिनचन्द्र पाल।

याद रखने योग्य बातें—

१—अपने द्वारा दूसरो के साथ कीगई बुराई।

२—दूसरो द्वारा अपने साथ कीगई भलाई।

इस शिक्षा ने मेरी मूल अहिसा-वृत्ति को स्पष्ट आचार मे लाने का मार्ग दिखाया। इस ३ साल के काल ने मेरे दिमाग को अच्छा भोजन दिया, मेरी भावनाओं को राष्ट्रीय बनाया, और मेरी स्पिरिट को दुष्टता से हटाकर शिष्टता और समझदारी की ओर मोडा। मेरे भावी जीवन की असली नीव यही पडी। इसका जितना श्रेय मेरे काका साहब को दिया जाय उतना सत्य व वाजिब है।

—:४:—

दुःखद घटना

मेरे चाचाजी का तबादला भेडीताल[1] (बरहलगंज) होगया। वे बहुत चाहते थे कि मुझे अंगरेजी पढाई जाय। मैं अपने मा-बाप का उस समय इकलौता व लाडला बेटा था। मार्तण्ड[2] का जन्म उन दिनो हुआ ही था। मुझे अपने से दूर भेजने की हिम्मत उन्हे नहीं होती थी। बरमण्डल में रहते हुए काका साहब ने मुझे तमाम दफ्तरी कार्यवाई से इतना परिचित कर दिया था कि उनके वहा से चले जाने के बाद कोई एक साल तक मैने तहसील का सारा काम चलाया था। उन दिनो ग्वालियर राज्य के फैक्टरी इन्सपेक्टर श्री वासुदेवराव शाहाणे बी० ए०, एल-एल० बी० दौरे पर वहा आये थे। मेरे कामकाज, रग-ढग से इतने प्रभावित हुए कि उन्होने मेरे पिताजी से यह वादा लिया कि मुझे अग्रेजी पढ़ने के लिए उज्जैन जरूर भेजेगे व अपने मित्र कालेज के तत्कालीन प्रिंसिपल राजे साहब को एक पत्र लिखा कि हरिभाऊ को मेरा पुत्र समझकर इसकी शिक्षा-दीक्षा मे दिलचस्पी लीजिए। मगर पिताजी ने स्नेह की दुर्बलता-वश मुझे नहीं भेजा। इससे मेरे चित्त को बडी ठेस लगी। सयोग से सुन्दर[3]

१—भेडीताल, जिला गोरखपुर,(ग्वालियर के सरदार जटार साहब की जमींदारी) २—सस्ता-साहित्य-मंडल का मन्त्री। ३—मेरी चचेरी बहिन।

की शादी (सन् १९१०) में चाचाजी आये और उन्होंने मुझे काशी लेजाकर पढ़ाने का प्रस्ताव रक्खा। मगर कहा कि यदि दासाहब (मेरे पिताजी) मना कर देंगे तो मै नही ले जाऊगा। मैंने जीजी व दासाहब (माताजी व पिताजी) को अकेले मे कहा—मेरी आगे पढने की तीव्र अभिलाषा है। काका साहब मुझे काशी लेजाना चाहते है। आपसे पूछेंगे। आपने इनकार किया तो नही लेजावेगे। लेकिन इसकी कीमत आपको बड़ी भारी चुकानी पड़ेगी। मैं कहीं ऐसा चला जाऊंगा कि फिर जिन्दगी भर आप मेरा मुह न देख पावेंगे। मेरे हठीले स्वभाव को वे खूब जानते थे। कुछ नही बोले। चाचाजी ने पूछा, तब भी चुप रहे। तब चाचाजी ने मुझे काशी लेजाने का निश्चय कर लिया।

बरमण्डल मे मैं लुक-छिपकर बीडी पीना सीख गया था। चाचाजी पीते थे, सो सोचा, देखें कैसा सवाद आता है। सवाद-ववाद तो खाक आया, धूआ पेट मे उतर गया व दिमाग मे चढ़ गया तो बडी देर तक परेशान रहा। लेकिन एक दोस्त ने उसमे पीछे की तरफ पीपरमेट लगा कर पिलाया तो बडी ठण्डी-ठण्डी व अच्छी लगी। लेकिन जब काशी जाने के लिए गाड़ी मे बैठा तो भाव-विभोर होगया। गगा के किनारे, काशी विश्वनाथ की नगरी मे विाद्यध्ययन का अवसर—कितना पुण्य, कितना बडा भाग्य ! ऋषिकालीन विद्यार्थियो व छात्रोकी तरह एक आदर्श-विद्यार्थी का जीवन बिताऊगा, न किसी बुराई मे लिप्त होऊगा, न किसी व्यसन मे फसूंगा। 'राड,सांड,सीढ़ी,संन्यासी, इनसे बचै सो सेवै कासी।' यह कहावत सुन चुका था। अपने जीवन को सब तरह पवित्र रखने का दृढ़ निश्चय किया।

१९११ से १५ तक, पाचसाल, मैने काशी व प्रयाग मे रहकर मैट्रिक पास किया। यह काल विद्याध्ययन के साथ-साथ साहित्य-सेवा व समाज-सेवा के प्रकृत कार्यारभ का और अपने सद्भावो की व्यावहारिक परीक्षाओ के भी आरम्भ का काल था। बरमडल से ही लोकमान्य तिलक

मेरे आराध्य-देव बन चुके थे। काशी मे मुझे एक ऐसे पथ-दर्शक[1] मिल गए जिससे तिलक महाराज की तरह देश-सेवा मे जीवन लगाने का सकल्प दृढ होने लगा। मेरे काशी आजाने के बाद काका साहब की भी जाति-सेवा व साहित्य-सेवा करने की भावना को मूर्तरूप मिलने लगा। उन्होने एक मासिक पत्र काशी से निकालने का निश्चय किया व आर्थिक के अलावा सब जिम्मेदारी मुझपर डालदी। प्रेरणा व देख-भाल उनकी, कार्य की जिम्मेदारी मेरी। इस समय मेरी अवस्था १६-१७ साल की थी व मै सातवे दर्जे में पढता था। मेरे साथ मेरे दो छोटे चचेरे[2] भाई व एक फुफेरा भाई हरिशकर[3] भी पढने के लिए रखे गए थे। चाचाजी का सख्त हुक्म था कि विद्यार्थियो को सब काम हाथो से करना चाहिए। पानी लाना, कपडे धोना, रसोई बनाना, चौका बरतन, सौदा-सुलुफ सब काम हम लोग खुद ही करते थे। हरिशकर व सुन्दरलाल दो तो बच्चे ही थे। दत्तू मुझसे दो साल छोटा था। इसलिए सारी जिम्मेदारी हम दोनो पर और सबसे बड़ा होने के कारण मुख्यतः मुझपर थी। दत्तू शुरू से ही कुछ गैर-जिम्मेदार था व चाचाजी उससे नाराज व दुखी रहते थे। इससे मेरी नैतिक व व्यावहारिक जिम्मेदारिया कितनी भारी थी—इसका अनुमान पाठक सहज ही लगा सकते हैं। हम रहते रामघाट, कालभैरव, दूधविनायक आदि की तरफ व पढते थे ठेठ कमच्छाके हिन्दू कालेजियट हाईस्कूल मे। हमेशा पैदल आते-जाते। खूब तेज चलने पर ३५-४० मिनट मे घर से स्कूल पहुच सकते थे। घर का, स्कूल का, व पत्र (औदुम्बर) का इतना काम रहता था कि शाम को स्कूल से आते ही दूसरे दिन की किताबे बस्ते मे छाट-कर रख देता था। अक्सर दोनो वक्त के भोजन व चौके बरतन का बोझ मुझी पर रहता था। रात को काम-काज मे ६ बज जाते। इतना थक जाता कि पडते ही नीद आजाती। सुबह फिर ८-६। बजे तक बडी मुश्किल से रसोई-पानी से निवृत्त होकर किसी तरह बस्ता लेकर दौडते-

१—डाक्टर हरि रामचन्द्र दिवेकर, साहित्याचार्य। २—ये दोनों अब संसार में नहीं है। ३—बम्बई मे टी०टी०आई०हैं।

भागते स्कूल पहुचता। 'औदुम्बर' का बहुत-कुछ काम स्कूल मे व क्लास मे करता। शिक्षक भी मेरे परिश्रम व साहित्य-सेवा के काम से प्रसन्न रहते थे—इसलिए 'होमटास्क' के लिए कभी टोकते नही थे। हेडमास्टर गुर्टू[1] साहब ने मेरे लिए बनारस के डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट को एक प्रमाणपत्र भी दिया था, जिसमें मेरी सजीदगी, समझदारी व सेवा-भाव का उल्लेख किया था जिससे 'औदुम्बर' का डिक्लेरेशन बिना जमानत मिल गया।

इन जिम्मेदारियों की चिन्ताओं ने, खासकर दत्तू को प्रसन्न व सतुष्ट रखने की चिन्ता ने मेरे दिमाग पर बहुत बोझ डाला। उस पर बडा तनाव व जोर पड़ने लगा। वरमण्डल मे जैसे काकी को सतुष्ट रखने की नीति मैंने रक्खी वैसे ही काशी मे दत्तू को। लेकिन इसमे पूरा कामयाब न होसका। एक रोज दत्तू मुझसे नाराज होकर चला गया व दूसरी जगह रहने लगा। मैंने उसे हाथ-पाव जोड कर बहुत समझाया, मिन्नत-चिरौरी की, लेकिन वह न माना। अखीर काका साहब आये। मुझे अपनी इस अयोग्यता व असमर्थता पर इतनी आत्म-ग्लानि हुई कि मैंने उनके सामने प्रस्ताव रक्खा—"दत्तू मुझसे रूठ गया है। उसको कष्ट पहुँचाकर मैं यहा रहना व पढना नही चाहता। काकी को कितना रंज होता होगा। मुझे घर भेज दीजिए। आपके आशीर्वाद से जितना कुछ बनेगा मैं उधर ही पढ लूंगा।" उन्हे इस प्रस्ताव से बडी ठेस लगी। मुझसे कहने लगे—"दत्तू को मैं जानता हूँ। तुम्हारी काकी भी जानती है। घर भेजना होगा तो दत्तू को भेजूंगा—तुम्हें नही। जितना बोझ तुम पर है उतना दूसरे किसी पर होता तो अब तक मुह छिपा कर भाग जाता। मेरे पुत्र तो तुम होने चाहिए थे। उनकी इस उदारता और वत्सलता से मैं आधा जमीन मे गड गया। लेकिन उन्होने दत्तू को जो बुरा-भला कहा, वह अब भी मुझे तीर की तरह चुभता रहता है। मैंने यही माना है कि मेरे बड़े भाईपन मे जरूर कसर थी, जिससे मैं दत्तू का दिल न जीत सका और मेरी ही कमियो के कारण उसे बुरा-भला सुनना पडा व पडता था।

१—सर इकबालनारायण गुर्टू।

यदि मुझमें काफी अहिंसा-भाव होता, मेरा जीवन प्रेममय व रसमय ही होता तो उसकी मधुरता व स्निग्धता उसे अवश्य ही पिघला लेती। बाद मे तो दत्तू मुझसे खुश रहने लगा था—लेकिन उस घटना की छाप मेरे दिल से अभी तक नहीं मिटती है। मेरे दिल व दिमाग को इतना धक्का लगा था कि मुझे व चाचाजी को भी यह शक होने लगा था कि मेरा चित्त कहीं उचट न जाय।

—:५:—

योग का पाठ

इसके पहले की एक घटना मुझे लिखनी है जिसने मुझे योग का प्रत्यक्ष पाठ पढाया। सुन्दरलाल को एक रोज रात को दस्त लगे व उल्टी हुई। वह अक्सर अधिक खा लिया करता था। हम समझे, बदहजमी होगई है। रात का वक्त—हमारी जान-पहचान अभी ज्यादा नहीं हो पाई थी, न दुनिया का ही कुछ तजरुबा था। मकान मालिक से कहा तो उसने कहा—सब ठीक होजायगा, सुबह किसी वैद्य को दिखा देंगे। उसे असल मे हैजा होगया था। पिछली रात को जब उसके चिह्न खराब दिखाई देने लगे तो हम घबराये व वैद्यको बुलाकर लाते हैं, तब तक वह चल बसा। मुझ पर तो मनो पत्थर पड गये—अब काका साहब व काकी को क्या मुंह दिखायेंगे? सबसे बड़ी चोट तो यह लगी कि बिना दवा-दारू के ही लड़का हाथ से चला गया। इस मूढता व गफलत के लिए मैंने आज तक अपने को माफ नहीं किया। जब-जब याद आती है, शूल की तरह चुभती है और यह भाव मिटाये नहीं मिटता कि मेरी गफलत उसकी मृत्यु की जिम्मेदार है।

उसका दाह-कर्म करके उसी दिन हम काशी से बरहलगंज पहुँचे। चाचाजी को देखते ही मैं धडाम से गिर पडा व बेहोश होगया। इधर सुन्दरलाल का वियोग, उधर काकी का करुणक्रंदन, सामने मैं बेहोश। उनकी व्यथा की कथा कोन लिख सकेगा? मगर देखने वालों ने कहा कि

उनके चेहरे पर जरा भी शिकन नही पडी। लोग मातमपुरसी के लिए आने लगे। उनसे वे उसी सहज प्रसन्न मुख-मुद्रा से बातचीत करते। उनके शोक व वियोग की बातचीत छेडने के पहले ही काम-काज व व्यवहार की ऐसी-ऐसी बाते छेड देते कि लोगो को अवसर ही नहीं मिलता। वे आपस मे कानाफूंसी करते कि अजीव संगदिल आदमी है। हमको तो सुनकर रंज होता है, लेकिन इसके जाने तो मानो कुछ हुआ ही नहीं। उनके एक नजदीकी मित्र ने लोगों की यह टीका उन्हे सुनाई और खुद भी ठपका दिया कि ऐसा निर्मोहीपन किस काम का? चाचाजी ने उन्हे वशिष्ठ की एक कथा सुनाई। मैं बैठा हुआ था। विश्वामित्र ने वशिष्ठ के एक-एक करके साठ पुत्र मार डाले तो अरुन्धती ने कहा—वशिष्ठ तुम्हारा हृदय नही, पत्थर है। इतने पुत्रो के मरने पर भी तुमने उफ नहीं किया। वशिष्ठ ने उत्तर दिया कि नही, तुम गलती पर हो। मैं आखिर पिता हूं। उन्होंने अपना हृदय चीरकर दिखाया—उसमे साठ गहरे घाव थे व उनमे से खून की धारा बह रही थी। मित्र से उन्होने कहा—मास्टर साहब, मेरे हृदय मे गहरा जख्म हुआ है, मेरी जिन्दगी मे पहली बार ऐसी चोट मुझे लगी है, लेकिन मेरा कर्तव्य यह नही है कि मैं उसे दूसरे को दिखाऊ व सुनाऊ। शान्ति से खुद उसे सहन करू, इसमें मेरी बहादुरी है। अपने दुःख दूसरो को सुनाना गोया दूसरो को दुखी बनाना है। जो कायर होते है वे दूसरो मे अपना दुःख बाटकर जी हलका करते है। जो मर्द होते है वे अपना दुःख तो खुद चुपचाप सहते ही हैं, दूसरे के दुःखों व कष्टो को भी झेलते है। मेरा कर्तव्य है, दूसरो को सुखी बनाना। इस हरि को देखो, उस दिन कैसी हालत होगई। मैं इसे इतना कमजोर नही समझता था। इसकी काकी तो स्त्री है। माता है। यह सुनकर मित्र भी लज्जित हुए और मै अपनी कमजोरी पर इस नई दृष्टि से विचार करने लगा। आज काका साहब को मैंने एक योगी के रूप मे देखा। इतना मनः-सयम बहुत कम लोगो मे पाया जाता है। मेरा दिल अब भी इतना कच्चा है कि किसी के शोक

व रोदन से—नाटक व सिनेमा मे भी किसी की विपत्ति को देखकर मेरी आखो मे आंसू आजाते हैं।

इसके बाद से जब कभी ऐसे शोक व दुःख के प्रसग आते हैं तो काका साहब की वह मूर्ति मेरी आखो के सामने खडी होजाती है व उनके ये शब्द कानो मे गूजने लगते है—

'कायर अपने दु.ख को दूसरो मे बाटता है, मर्द दूसरो के दुःखो मे हाथ बटाता है।

अब मैं अपनी इस कमजोरी का विश्लेषण करता हूं तो इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि दूसरो के दुःखे व कष्टो के दृश्य या कल्पना या अनुभव से मैं अधीर व कातर होजाता हूँ। खुद मुझपर कोई कष्ट, सकट या दुःख आपडा है तो उसमे मैं कभी विचलित नहीं हुआ। सुन्दरलाल की अचानक मृत्यु से जो मुझे बेहोशी आगई उसका कारण एक तो अपनी मूढता व गफलत के प्रति अजहद आत्मग्लानि, व दूसरे काकी के शोक की कल्पना व उसके प्रति समवेदना। फिर भी चाहे शोक या दुःख अपना हो या पराया—चित्त की प्रसन्नता को जाने दो, समता का खो बैठना मनुष्य की कमी व कमजोरी ही समझी जानी चाहिए। काका सा॰ ऐसे अवसरो पर नारायणस्वामी का एक दोहा कहते थे—

नारायण दुख सुख उभय भ्रमत फिरत दिन रात।
विन बुलाय ज्यो आरहे बिना कहे त्यो जात॥

मैं अक्सर देखता था, जब बहुतसी चिन्तायें व झंझटे उनके चित्त को व्याकुल करने लगती थी तो सब काम छोडकर सोजाते थे और आश्चर्य यह कि उन्हें गाढ़ी नीद आजाती थी। वे ऐसे अवसरो पर कहा करते थे कि अब सबसे जरूरी, सबसे पहला काम, सो जाना है।

बापू जो कहा करते है कि अहिंसा वीरो का, मर्दों का धर्म है, कायरो का नहीं, यह सोलहो आना सच है। अपने को खतरो में डालने का साहस, अपने कष्टो व मुसीबतों मे अविचलता, दूसरों के दुःखो मे सहानुभूति व पतन की अवस्था मे करुणा पैदा होना, अहिंसा के ही लक्षण हैं।

जो अपने कष्टो को खुशी-खुशी सह सकता है, भयो व चिन्ताओ के सामने शेर की तरह जाता है, वह सच्चा अहिसक है, वही दूसरो को बचाने मे जान को बाजी लगा सकता है। अपने को बचाने व दूसरो को फसाने की कृति भले ही दुनिया मे 'चतुरता' समझी जाय, वह है कायरता की व हिसा की निशानी ही।

—: ६ :—

आत्म-शुद्धि

'औदुम्बर'[1] मे जो घाटा रहता था, उसकी पूर्ति काका साहब करते थे। भेडीताल (गोरखपुर) रियासत के वे मैनेजर—मुख्तार आम थे। तनख्वाह के अलावा भी उन्हे ऐसी आमदनी होती रहती थी जिसे 'रिश्वत' या पाप की कौडी नही कह सकते। वह वे इस घाटे मे लगाते रहते थे। बाद मे उन्होने किसी तरह अपने मन को उस आमदनी के लिए भी समझा लिया, जिसे 'शुद्ध कौडी' नही कह सकते। अशुद्ध कौडी भी शुद्ध काम मे लगादी जाय तो दोष नही—यह दलील उनके मन ने गढ़ली थी। लेकिन एक समय ऐसा आया जब उनके दिल ने इस भार को महसूस किया। उन्होने अपने मालिक जटार साहब के सामने जाकर खुद बखुद सारी बाते कह दी और इस्तीफा उनके हाथ मे रख दिया। लोगो ने समझाया कि इस्तीफा मत दीजिए। रोजी का कोई जरिया नही है। उन्होने कहा—अब नौकरी करने का धर्म नही रहा। शुद्ध सेवा करते हुए जो मिलेगा उसीमे सबका हित है।

कुछ समय के बाद, इसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि 'औदुम्बर' पत्र को बन्द करना पडा व 'औदुम्बर' प्रेस को बेंच देना पडा।

'प्रेस' के लिए शेअर्स एकत्र किये गये थे—लेकिन काका साहब ने काकी के लगभग दो हजार के जेवर बेचकर भी जब शेअर-होल्डरो का पाई-पाई रुपया चुका दिया, तो किसीने समझाया—घाटा शेअर होल्डर्स

१—एक मासिकपत्र जो १९११ में हमने काशी से प्रकाशित किया था।

मे क्यो नही बाट देते ? उन्होने दृढता से उत्तर दिया—नही, मेरे भरोसे शेअर होल्डरो ने रुपये दिये थे। उनका चुका ही देना चाहिए।

प्रेस बन्द होचुका था, लेकिन अभी बिका नही था। इसी बीच प्रेस मे चोरी होगई। प्रेस के कुछ सामान के साथ-साथ हमारा घरू सामान भी चोरी चला गया। हम सब तो अफसोस करने लगे, लेकिन जब उन्हे मालूम हुआ तो मुझसे कहने लगे—हरि, अच्छा हुआ एक बोझ कम होगया। यह पाप का पैसा जितना जल्दी चला जाय अच्छा है, नही तो यह दूसरे स्वच्छ पैसे को भी ले डूबेगा। उनके इन वचनो का मेरे चित्त पर गहरा असर हुआ। मुझे मानो एक नवीन प्रकाश मिला।

ये दिन हमारी बडी आर्थिक कठिनाई के थे। वे हमेशा ईश्वर पर भरोसा रखने के लिए हमसे कहते रहते। एक रोज एक किस्सा सुनाया, जिसने मेरे हृदय मे अटूट ईश्वर-श्रद्धा पैदा करदी। 'हरिजन सेवक' मे मैने उसे छपा दिया था—वह ज्यो का त्यो यहा दिये बिना नहीं रह सकता।

कहानी

"एक राजा था। बूढा होने पर उसके मन मे विचार आया कि राजपाट बहुत कर चुका। बेटे भी राजकाज सभालने लायक होगए। सारी उम्र दुनियादारी मे ही बिता दी—अब कुछ ईश्वर-भजन भी करना चाहिए। दीवान ने भी उसके इस प्रस्ताव का समर्थन किया। युवराज को तो यह तजवीज और भी पसन्द आई, किन्तु पिताजी का अपने से दूर रहना उसे अखर भी रहा था।

युवराज को राजगद्दी पर बिठा देने के बाद राजा वन-गमन की तैयारी करने लगा। साथ मे क्या-क्या चीज ले जाय इसका विचार शुरू हुआ। कम से कम एक बिस्तरा चाहिए ही। खाने-पीने का कुछ सामान और बरतन भी जरूरी मालूम हुए, और सामान तथा बिछौना उठाने के लिए कम से कम एक नौकर। बेटे ने बहुत कुछ कहा कि सवारी के लिए

घोड़ा लेते जाइये, सामान तथा नौकर-चाकर और ले लीजिए, लेकिन राजा को तो विराग का रंग लग चुका था। नौकर को साथ ले पैदल महल से बाहर होगया। नगरवासी बाहर की हद तक राजा को पहुँचाने के लिए आये। राजा न्यायी और प्रजाप्रिय था। प्रजाजन के आसुओ ने उसे बिदाई दी। राजा यो तो अकेले गया; पर मानो सब प्रजाजन का मन अपने साथ लेता गया।

कुछ दूर जाकर राजा को बड़ी प्यास लगी। उसने नौकर से पानी लाने के लिए कहा। कुछ ही दूर एक झरना बहता था। नौकर लोटा गिलास लेकर दौडा गया। राजा ने सोचा, चलो मैं भी झरना देख लू। नौकर छान कर लोटे मे जल भर ही रहा था कि एक किसान आया। उसने झरने मे हाथ धोये, दोनो हाथो से पखे की तरह पानी इधर-उधर हटाया और चुल्लू से पानी पीने लग गया। राजा की नजर पडी। उसने आश्चर्य से चिल्ला कर नौकर से कहा, अरे देख, यह तो बिना गिलास के चुल्लू से ही पानी पी रहा है। नौकर ने कहा, हुजूर, गाव के लोग तो इसी तरह पानी पीते है। राजा ने कहा—तो पहले क्यो नहीं बताया, जब सामान लिया जारहा था? हम लोटा-गिलास फजूल ही लाये। राजा को यह बात जानकर बड़ा ही आनन्द हुआ। उसे मालूम हुआ, मानो ईश्वर की उसपर विशेष कृपा हुई जो इतनी जल्दी ऐसा अनुभव हुआ। उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया और नौकर से कहा—यह लोटा-गिलास किसी गरीब को दे दे। ईश्वर ने जब पानी पीने के लिए हाथ बना दिये है तो फजूल इस बोझ को क्यो लादे? ईश्वर की रचना का उपयोग क्यो न करें? नौकर ने राजा को बहुत समझाया, पर उसने एक न मानी। इसी दृश्य ने ईश्वर के रचना-नैपुण्य के प्रति उसका आदर और श्रद्धा बढा दी थी।

दोपहर का वक्त। एक खेत के किनारे पेड़ की छाँह के नीचे राजा के लिए खाना पक रहा है। राजा मन मे अपने पिछले जीवन का सिंहावलोकन कर रहा है। आज कुछ घण्टो के जीवन मे उसने जो आनन्द

लाभ किया वह पिछले ७० वर्ष मे उसे नहीं मिला था—यह अनुभव कर रहा था। इतने मे एक किसान पास के खेत से आया। कपड़े मे बधी हुई मोटी रोटिया निकालीं, एक हथेली पर रोटी रखली, उसी पर चटनी, और दूसरे हाथ से खाने लगा। राजा की निगाह पड़ी। उसके आनन्द की सीमा न रही। उछल कर नौकर से कहा—अरे देख तो, हम थाली नाहक ले आये, रोटी तो इन्सान हाथ पर रखकर भी खा सकता है। नौकर ने जवाब दिया—महाराज, किसान तो इसी तरह खाया करते है। राजा ने जरा झल्ला कर कहा—तो भले आदमी घर पर ही यह क्यों नहीं बता दिया? नौकर ने कहा—सरकार आप तो राजा ठहरे, आपसे यह सब कैसे होता? राजा ने कहा—पर मैं तो फकीर बनना चाहता हूं। मनुष्य के राज्य से हट कर मैं ईश्वर के राज्य मे पहुचना चाहता हूॅ। मैं देखता हूं, मनुष्य का राज्य इन्सान को बनावटो का गुलाम बनाता है, और ईश्वर की रचना उसे स्वाधीन, स्वयपूर्ण, स्वावलम्बी बनाना चाहती है। अब इन बर्तनो की मुझे कोई जरूरत नही है।

रोटी खाकर किसान अपने बाये हाथ का सिरहाना देकर उसी घास पर सो गया और ऐसी गाढ़ी नींद लेने लगा कि राजा को सारी उम्र वह नसीब न हुई। राजा मन में बड़ा प्रसन्न हुआ। भगवान को बार-बार धन्य-वाद देने लगा, उसकी कुदरत पर और इन नये-नये अनुभवो पर वह धन्य-धन्य कहने लगा। नौकर से कहा—अरे देख, आज मुझे कुदरत का सच्चा सुख मिल रहा है। इस बिस्तर को फेंक, और तू भी घर लौट जा, ईश्वर ने इन्सान को इतना पूरा और कुदरत को इतना भरा बनाया है कि—मुझे तेरे और इस सामान के अवलम्बन की कतई जरूरत नहीं। मुझे अकेला अपने हाथ-पाव और ईश्वर के भरोसे छोड़कर तू चला जा। अब मैं सब तरह सुखी रहूगा। अपने हाथ-पाव से काम लूगा और प्रभुमय जीवन बिताऊंगा।

: २ :

दोपहर राजा ने उसी किसान की तरह हरी घास पर सोकर काटी

और चलते-चलते शाम को एक बडे से बड़े पेड़ के नीचे आकर बैठा। ईश्वर-चिन्तन मे डूब गया। इतने ही मे एक आदमी झाडू हाथ मे लेकर आया, और हाथ जोड़ कर खडा होगया। राजा की आखे खुली तो पूछा, 'तू कौन है और हाथ बाधे क्यो खडा है ?'

"मैं देवदूत हूँ।"

"तो तू यहा क्यो आया है ?"

"मुझे ईश्वर ने आपकी सेवा के लिए भेजा है। आप जहा रहे वहा झाडू लगा देने और सफाई करने का मुझे हुक्म है।"

"तो भई, मुझे तो तेरी सहायता की जरूरत नही है। खुद मेरे ही नौकर-चाकर क्या कम थे जो मै ईश्वर को कष्ट मे डालता। जा, तू ईश्वर से मेरा प्रणाम कहकर कह देना कि, मुझे तुम्हारे सिवा किसी चीज की जरूरत नही है।'

थोड़ी देर मे वह झाडू-वाला अब की फर्श और झाडू लेकर आगया, और आते ही झाडू-बुहार करने लगा। राजा ने पूछा--'तू फिर आगया ?'

"जी हा, मुझे भगवान् का हुक्म है कि आपसे कुछ न पूछू और जो हुक्म है, उसकी तामील करता रहूँ।"

राजा चुप रहा। मन मे कहा—करने दो। अपने से क्या मतलब। उसके फर्श पर तो हमे बैठना है ही नही। अरे, यह सब सुख-विलास मेरे महल मे क्या कम था ?

भोजन के वक्त वही आदमी एक थाल ले आया, जिसमे तरह-तरह के राजसी पक्वान्न और मिष्ठान्न थे।

राजा ने देखकर कहा—"भई, तुम मुझे क्यो तंग करते हो ? मुझे तो इसमे से कुछ खाना नही है ?"

देवदूत—"मुझे जो हुक्म हुआ है उसकी तामील कर रहा हूं।"

राजा ने खाना गरीबो को खिला दिया और खुद जो कन्दमूल जगल मे से बीन कर लाया था, उसको खाकर पेड के नीचे हरी घास के गद्दे पर सोरहा।

रोज यही सिलसिला रहता।

थोडे ही अर्से मे चारो ओर शोहरत फैलने लगी कि कोई बडा पहुँचा हुआ महात्मा आया है। रोज न जाने कहासे नया-नया फर्श आकर बिछता है और बढ़िया भोजन का थाल आता है। बडा करामाती है।

दर्शको और भक्तो का ठठ जमने लगा।

एक किसान अपनी गरीबी से बडा बेजार था। उसने सोचा, इस महात्मा से कुछ उपाय पूछे। यह नगे हाथ आया था और रोज इतना ठाठ कैसे लगा लेता है।

बडे भक्ति-भाव से प्रणाम करके एक रोज अपनी गरीबी का दुखडा रोकर सुनाया। बोला—"महाराज, मुझे भी तरकीब बतादो जिससे इसी तरह मेरा भी ठाट-बाट लग जाय। घर बैठे थाल आजाया करे।"

राजा ने कहा—"भई, मैं तो कुछ तरकीब-वरकीब जानता नही हूं। ईश्वर का नाम लेता हूं, वही भेज देता है।'

"तो महाराज, मुझे क्यो नही भेज देता, आप तो कुछ नहीं लेते है फिर भी जबरदस्ती भेजता है, और हम रोज पुकारते हैं फिर भी वह नही सुनता।

"भई मैं राजा था। मैंने उसके नाम पर राजपाट सब छोड़ दिया और जगल में आकर रहने लगा। तो उसने वह ठाट यहा भी लगा दिया, मगर मुझे इसकी कोई जरूरत नहीं है। तू भी ईश्वर के नाम पर सब कुछ छोड़ दे। मै इसके सिवा और तुझे क्या रास्ता बताऊं।"

किसान खुशी-खुशी घर दौड़ा गया। घरवाली को पुकार कर दरवाजे ही से कहा—"अरी सुन! बड वाले महात्मा ने एक तरकीब बताई है—अपना सब दलिद्दर दूर होजायगा। कल से मैं ईश्वर के नाम पर घरबार खाना-पीना सब छोड-छाड कर एक पेड के नीचे आसन जमा कर बैठ जाऊंगा। आज घर में जो कुछ घी-गुड हो उसका हलवा पूड़ी बना के मुझे खिलादे—न जाने कितने दिन भूखा रहना पड़े।"

"तुम पागल तो नहीं होगए हो, क्या बहकी-बहकी बाते कर रहे हो?"

किसान ने हाथ उठाया और कहा—अरी, तू देर मत कर, निहाल होजाने की तरकीब ढूंढ लाया हूं, तू जल्दी कर।"

* * *

"भूखा-प्यासा बैठे दो दिन होगये, देवदूत अभीतक क्यो नही आया इस महात्मा ने चकमा तो नही दिया। दो दिन की कमाई से भी गया और भूखा मरा सो अलग" किसान मन मे पछताने लगा। कोई आदमी आता दिखाई पड़ता तो समझता, यह देवदूत ही आया होगा। भूख से व्याकुल हो ईश्वर को बुरी तरह कोसने लगा—"उस साले राजा का तो एक ही मिनट मे ठाट लगा दिया। मैं दो दिन से भूखो मर रहा हू, कोई सुनवाई ही नही। गरीब और दुखियो का कोई नही। ईश्वर भी बडो का पक्ष करता है।" इतने मे थाल हाथ मे लिये हुए एक आदमी आता दिखाई दिया।

किसान ने आतुर होकर पुकारा—"तू देवदूत है ?"

'हॉ'

"तो अब तक कहा मर गया था ? ला, जल्दी ला, क्या-क्या लाया है ? किसान आदमी, दो दिन से पेट मे कुछ भी नहीं डाला है।"

उसने थाल आगे बढ़ाया तो तीन-चार मोटी-मोटी रोटिया और दो प्याज। किसान जल-भुन कर खाक होगया। थाली उठाकर देवदूत के सिर पर दे मारी। 'शर्म नही आई रोटी और प्याज लाते हुए ? उस राजा को छप्पन और, मुझ गरीब को वही प्याज रोटी। अरे, यह तो मै रोज ही खाता था। इसीके लिए दो दिन भूखो मरने की क्या जरूरत थी ? लौटा लेजा और भगवान से कह कि उस महात्मा जैसे ठाट लगादे तो खाना खाऊंगा।'

देवदूत ने भगवान से आकर किस्सा सुनाया। उन्होने कहा—"उसे समझा कि राजा ने जो मेरे नाम पर छोडा था, वह उसे देदिया, जो तूने छोड़ा सो तुझे भेज दिया। तू तो इसका भी अधिकारी नहीं था। राजा

का त्याग तो सच्चा और निष्काम था । अब भी तो वह उसका उपभोग नहीं कर रहा है ।"

*　　*　　*　　*

इन्हीं दिनों स्वामी रामतीर्थ के व्याख्यान मुझे पढने को मिले । उन्हे पढ़कर मन मे अजीब मस्ती पैदा होती थी । ऐसा लगने लगता कि मै सचमुच ईश्वर-रूप, ब्रह्मरूप हूं । साप, बिच्छू, शेर, चोर-डाकू, बाढ, आग, मेरा कुछ नही बिगाड सकती । यह सब मेरे ही तो रूप हैं । मै इनसे क्यो भय खाऊं ?

जटार-साहब रचित 'अव्यक्तबोध' तो मै बरमडल मे ही पढ चुका था 'स्वानदसाम्राज्य' काशी मे पढा । ये मराठी मे वेदान्त के अच्छे ग्रंथ हैं । अद्वैत के प्रति मेरे विश्वास को यहा दृढ़ता मिली । बचपन मे मुझे मा-बाप ने देवी-देवताओ से यह वर मागना सिखाया था—'विद्या दीजै, बुद्धि दीजै, आपका मैं बाल-बच्चा ।' काशी आने पर एक ओर जहा वेदात की छाप जमी, तहाँ दूसरी ओर राष्ट्रीयता व देशभक्ति ने जोर जमाया । अब से काशी विश्वनाथ, मैया अन्नपूर्णा व कालभैरव से मैं वर मॉगने लगा—'भारतमाता को आजाद करो' ।

—:७:—

ढांकने वाला नहीं

निन्दा व चुगली मुझे बरदाश्त नही होती । खुद भी इन बुराइयों से अपने को बरी रखने का यत्न करता हूॅ । दूसरा के दोष, त्रुटि, कमजोरियो को देखकर भी उनकी इधर-उधर चर्चा करना मुझे अच्छा नही लगता । इनसे बेजा फायदा उठाने की तो कल्पना तक मुझे नहीं आती । पाठक इसे अत्युक्ति न समझें । फिर भी कभी-कभी किसीकी कोई बात सहज-भाव से मुंह से निकल जाती थी । छुटपन मे मैंने एक शख्स को पराई स्त्री से कुकर्म करते हुए अचानक देख लिया । दोनो बडे लज्जित हुए और मेरे हाथ जोड़ने लगे । मैंने उन्हे आश्वासन दिया कि किसी

से नहीं कहूँगा—मगर आयदा के लिए तुमको कसम खानी होगी। मैंने उसे अब तक निबाहा है। ऐसे ही एक अवसर पर काका साहब ने मुझे एक ऐसी कहानी सुनाई जिसने हमेशा के लिए मेरे हृदय मे घर कर लिया।

"एक ब्राह्मण की स्त्री का चाल-चलन अच्छा नहीं था, मगर अपने पति को वह भुलावे मे डाले हुए थी। वह उसके सतीत्व पर पक्का भरोसा रखता था। एक रोज विदेश जाने के लिए पत्नी से विदा लेकर रवाना हुआ। किसी कार्यवश रास्ते से घर लौटा तो पत्नी के साथ दूसरे को सोता हुआ पाया। वह सन्न रह गया। "गर्दन काट दूँ? नाक काट लूँ? मगर इससे इनका सुधार कैसे होगा?" यह सोच उसने अपनी चादर उन्हें ओढा दी और वापिस चल दिया।

"इधर इनकी नींद खुली तो ब्राह्मणी की निगाह चादर पर पड़ी। 'यह चादर तो वे लेगये थे—यहा कैसे?' वह भेद समझ गई—उन्होने देख लिया। मन मे बहुत डरी। बडी बेचैन रहने लगी। सोचा, चिठ्ठी मे जरूर बुरा-भला लिखेगे। चिठ्ठी आई—मगर कुशल-समाचार व प्रेम-वार्ता के सिवा कुछ नहीं! उसने मन को समझाया—जब घर आयेंगे तब जरूर कसर निकालेंगे।

"ब्राह्मण घर आया। बडे प्रेम व अपनेपन से मिला। इस बीच चिन्ता व डर के मारे ब्राह्मणी सूख कर काटा होगई थी। जब रात को भी ब्राह्मण ने कुछ नहीं कहा—तब ब्राह्मणी बडे विस्मय में पड़ी। 'यह मनुष्य है या देवता? देखा तो जरूर; मगर कहते कुछ नहीं।' अपने आप ही कुकर्म का पछतावा उसे हुआ व उसका जीवन बदल गया। ब्राह्मण बारीकी से उसके इस परिवर्तन को देखकर मन-ही-मन सन्तुष्ट होता रहता था। मरते दम तक उसने ब्राह्मणी को इस बात का परिचय नहीं दिया कि उसने कुछ देखा था। ब्राह्मण की मृत्यु पर ब्राह्मणी फूट-फूट कर रोती है। अड़ोस पड़ोस की औरते ताना देती है—जैसी पतिव्रता है सो हम जानती है! क्यो मुहल्लेवालो की नींद हराम करती है? वह बड़े दुखी स्वर से जवाब देती है—तुम क्या जानो? वह कैसा देवता

था। तुम ऐसे समय भी मुझे कोस रही हो—उसने देखकर भी मुझ पर परदा डाला। उसने मुझे उबार लिया। दुनिया मे उघाडने वाले सब है, ढांकने वाला नही। तुम उघाड़ने वाली हो, वह ढाकने वाला था। हा! आज दुनिया मे मेरा ढाकनेवाला नही रहा।"

सुधार का कैसा अनुपम व चमत्कारिक उपाय है यह! हममे से कितने है जो दूसरो के दोषो की चर्चा करते समय, उसमे रस लेते समय इस बात को याद रखते है कि हम कैसे है? फिर दूसरो को ढाककर सुधारने की दिव्यता तो विरलो मे ही पाई जाती है। खुद अपने दोष दुनिया के सामने रखना एक बात है। दूसरे के दोष दुनिया को सुनाना दूसरी बात है। अपने दोष सुनाने से अपनी शुद्धि होती है व दुनिया अपने से सावधान! दूसरो के दोष सुनाने से हम कीचड़ मे पड़ते है, प्रतिहिंसा के पात्र बनते है, व दुनिया मे कीचड़ उछालने की जिम्मेवारी लेते है। 'पिशुन पराये पाप कहि देही'। जान बूझ कर अकारण पराये पाप सुनना 'अव्यापारेषु व्यापार' है, सस्कारहीनता का सूचक है व उसमे रस लेना दुष्टता का परिचायक है।

इस कहानी का ऐसा असर मुझपर हुआ कि अब 'अधिक ढाकने' की तरफ भले ही गलती मुझसे होजाय, किसी का 'पर्दाफाश' करना मेरे लिए नागवार होजाता है। कर्त्तव्यवश मुझे किसीकी बुराई व बुरी बाते सुननी पड्ती हैं, लेकिन भीतर से यही आवाज उठती रहती है कि ईश्वर मुझे इससे बचा। मुझे मन मे कई बार आश्चर्य होता है कि मनुष्य कुकर्म में एक-दूसरे को कैसे लिप्त कर लेते है? उनका हौसला कैसे होजाता है? एकाध मित्र से कभी पूछा तो उन्होने कहा—दा साहब,[1] यह दुनिया ही अलग है। इसमे रहने वाले एक-दूसरे को पहचान लेते है। उनकी आखे ही एक-दूसरे को अपना परिचय दे देती है। और वे खिच जाते है। ऐसे मामलो मे अधिकाश लोगो का यह अनुभव है कि पुरुष

1—मेरे साथी मुझे इसी तरह सम्बोधन करते हैं। यह दादा साहब का छोटा रूप है।

स्त्री को बिगाड़ता है। मुझे भी यह सच मालूम होता है। लेकिन काशी का मेरा अनुभव इससे उल्टा है। दो घटनाएं खुद मेरे साथ ऐसी हुई जिनमे स्त्रियो ने हरकत की। एक जवान विधवा थी। जिस घर मे हम किराये पर रहते थे उसीमे नीचे वह भी अपनी बुढिया सास के साथ रहती थी। मै रात मे छत पर सोया हुआ था। वह एकाएक आगई और मुझे जगाया। मैं एक दम जागा व चौक कर पूछा—क्या बात है, क्या हुआ! वह चुप। मैने झुंझला कर कहा—आखिर बताओ, तुम क्यों आई? उसने कहा—तुम कुछ समझते नही? अब तो मेरे पसीना-पसीना होगया; और मैंने आवाज दी—'दत्तू!' इतने मे वह नीचे खिसक गई। मुझे बड़ी मुश्किल से नींद आई। सुबह मैंने सब हाल दत्तू से कहा और हमने मकान बदल दिया।

एक दूसरे मकान मे एक ब्राह्मण-दम्पती रहते थे। एक रोज मैं जीना चढ़ रहा था—उधर से ब्राह्मणी उतरी। रास्ते में उसने सहसा मेरा हाथ पकड़ा और अपने वक्षस्थल पर लगा दिया। मेरे रोंगटे खड़े होगए। मैं हाथ छुडा कर ऊपर भागा। कई बार मन मे आया कि उसके पति से कह दूं। लेकिन एक तो यह कहानी याद आ जाती थी, दूसरे मन में सोचता—हमे अपनी पढ़ाई से मतलब। इन फालतू बातो मे क्यो पड़े? हम अपनी सभाल रक्खे—बस खतम!

एक स्त्री ने एक बार हमारी छत पर चिट्ठी डाल दी। उसमे मुझे भाई सम्बोधन किया था। अपना दुखड़ा रोया था—पति के त्रास से बचाने की प्रार्थना की थी। पहले दो स्त्रियो से मैं डर चुका था—और हम विद्यार्थी उसकी सहायता भी क्या कर सकते थे? हमने अपनी असमर्थता प्रकट करके उससे माफी मागली।

कई बार मैं मन में विचार करता हूं कि उन स्त्रियो ने मुझे ही क्यों अपना शिकार बनाना चाहा? मुझे ऐसा लगता है कि मेरी खूबसूरती इसका कारण होगी। बचपन मे मैं बहुत सुन्दर दीखता था। मेरी मा व मौसियां कहा करती थी कि एक वेश्या मेरी सुन्दरता पर रीझ कर

मुझे गोदी में उठाकर नाचा करती थी। अब उनके दिल की बात वही जाने।

मेरे मन मे यह सवाल भी उठा कि मैं बच कैसे गया ? इसके तीन कारण मुझे मालूम होते हैं—

१—पवित्र जीवन व्यतीत करने की मेरी प्रतिज्ञा।

२—मेरे परिवार का शुद्ध वातावरण।

३—स्त्रियो से सम्पर्क बढाने की ओर अरुचि और उनकी प्रवृत्तियो व गति-विधियों के प्रति उदासीनता।

मुझे अच्छी तरह याद है कि काशी में, तथा बाद में कानपुर रहते हुए, मैंने नियम-पूर्वक इस बात का ध्यान रक्खा है कि गंगा जाते हुए देव-दर्शन करते हुए, स्त्रियो की तरफ कतई न देखू। दृष्टि-दोष से भी अपने को भरसक बचाऊ। इन्ही संस्कारो ने और सबसे बढकर भगवत्कृपा ने मुझे बचाया है।

—:o:—

सांप व भूत

काका साहब हमे हमेशा साहस की, कठिनाइयो मे हिम्मत न हारने की बल्कि अपनी नई-नई सूझ-बूझ से रास्ता निकालने की, व अपने पावों पर खड़े रहने की शिक्षा दिया करते थे। जब उन्होने हमे काशी छोड़ा तब हममे से कोई भी न रसोई बनाना जानते थे, न सौदा-सुल्फ लाना। प० नागेश्वर जी[1] को हमारा गार्डियन बना गये थे। हमे यह सूझ नहीं पड़ता था कि कितना आटा, दाल, चावल पकाने के लिए निकाले व कैसे पकावे। बिना किसीसे पूछे ही हमने अनुभव व अक्ल से सब काम सीखे। बहुत कमखर्ची से काम लेते थे। बीमार होने पर भी इक्का नही करते थे। रात मे दिया नही जलाते थे। दियासलाई सिरहाने रखकर अंधेरे में सोते थे। एक रोज रात को मेरी उगली में किसी जानवर ने काट खाया। मैं हडबडा

१—उस समय के हितकारिणी हाईस्कूल के एक हिंदी शिक्षक।

कर उठा और शक हुआ कि कहीं साप न हो। दिया जलाकर देखा तो उंगली पर जरा से खून का दाग था। मेरे एक फुफेरे भाई को सांप ने काट खाया था। सब लोग इसी भरोसे रह गये कि चूहे ने काटा होगा और वह मर गया। मुझे अन्देशा हुआ कि कहीं सांप न हो और मैं चूहे के भरोसे रह जाऊं। कमरा देख डाला, मगर साप मिला न चूहा। दत्तू घबरायगा—इसलिए उसे जगाया नहीं। हिंदी की एक पाठ्य-पुस्तक मे 'साँप के काटे के इलाज' पढे थे। मैंने फौरन सुतली से उंगली व कलाई पर बद बाध दिये। चूल्हा जलाया व कढ़ाई मे तेल डाल कर उसे चूल्हे पर चढ़ा दिया। चाकू निकाल कर पास रख लिया। मिश्री व नमक पारी-पारी से खाता। सोच लिया था कि जहा स्वाद मे फर्क आया कि चाकू से उंगली उडाकर तेल मे भून दूंगा। घण्टे-डेढ़ घण्टे तक मिश्री व नमक का प्रयोग करता रहा। इस परीक्षा से तो साप के काटने के लक्षण नहीं जान पडते थे। मगर नींद बहुत आती थी। यह विपरीत चिह्न था। आखिर मै थक गया और चूल्हा बुझाकर ईश्वर का नाम लेकर सोगया। काका साहब की सिखावन याद आगई—मौत लिखी होगी तो टलने वाली नही। दूसरे दिन मैंने दत्तू को किस्सा सुनाया और बड़ी मुश्किल से हाथ से बद काटे। वह बिगडा कि मुझे जगाया क्यो नही? कुछ होगया होता तो काका साहब क्या कहते?

एक ओर एक भयंकर सपना आया, जिसमे मेरे साहस की परीक्षा हुई। मै बरामदे मे सो रहा था। सपने में मैंने करवट बदली तो अपनी कोठरी मे कई चिराग जलते हुए दिखाई दिये। मैं विचार करने लगा कि दिया तो बुझा दिया था ये इतने दिये कैसे? शक हुआ कि कोई भूत-लीला है। मैं चित सो गया। देखता क्या हूं कि सामने दूर एक भिखारी खडा है। शक्ल उसकी रविवर्मा के भील के वेश में शिवजी वाली तस्वीर की तरह। मैंने उसे घूर कर देखा तो उसकी एक टाग मेरी नाक तक आती हुई दिखाई दी। अब मुझे विश्वास होगया कि भूत से पाला पड़ गया। इतने मे वह मेरी छाती पर दोनो ओर पैर पसार कर खड़ा

होगया। मैंने सोचा कि डर जायगे तो यह ले डालेगा। सुना था कि भूत पलीत उसके सिर होते हैं जो उनसे डरते है। मैं उससे अंग्रेजी मे बाते करने लगा—इस खयाल से कि यह समझ लेगा कि अंग्रेजी-दाॅ है, इन पर हमारा जादू नहीं चलेगा। अब क्या देखता हूं कि उसका सिर आसमान तक चला गया है। अब मैं हिम्मत हारने लगा। लेकिन याद आया कि महावीर व दत्तात्रेय का नाम लेने से भूत भाग जाते हैं। मैं जोर से बोलने लगा दत्तात्रेय—दत्तात्रेय। पास मे मेरा भाई दत्तू—दत्तात्रेय—सोरहा था। वह उठा व उसने आवाज दी—दा साहब, दा साहब, क्या बात है? बस भूत रफूचक्कर हुआ—मैं झटके से उठ बैठा। मेरा शरीर पसीने से तर था। दत्तू को किस्सा सुनाया तो कहने लगा—ऐसे वक्त मे भी आपको सूझी खूब!

इस समय बरमडल की एक साहस की घटना याद आरही है। मेरी उम्र कोई १३-१४ साल की होगी। तहसील मे खबर आई कि शेर ने एक गाय मार डाली। काका साहब नहीं थे। तहसील से सिपाही व तडवी (भील चौकीदार) बन्दूकें व तीर-कमठे लेकर घटनास्थल पर पहुँचे। मैं भी साथ गया। आमके एक बाग मे कुछ दूर से सिपाहियो ने पीछे की ओर आवाज दी—होशियार शेर आरहा है। मैं पीछे अकेला पड गया था। मेरे सामने से वह छलाग मारता हुआ निकला, मैं एक पेड मे दुबक रहा। लेकिन डरा नहीं। शेर एक करौंदे की झाडी मे छिप गया। सिपाही उसे तलाशते फिरते थे। साथ-साथ मैं भी। गाव के कुछ लोग भी दूर-दूर से तमाशा देखते थे। एक झाडी मे सिपाहियो को शक हुआ। मुझे उन्होंने मना किया—हरि भैय्या, आप सामने वाले टीले पर चढ जावें। मैंने कहा—नहीं, मैं तुम लोगोंके साथ रहकर देखूंगा। उन्होंने कहा—राव साहब (काका साहब) यहा नहीं हैं। हम यह जिम्मेदारी नहीं लेंगे। आप दूर चले जाइए। मैं मजबूर हुआ। सिपाहियो ने झाडी मे पत्थर फेंके। बिजली की तरह शेर झपटा और हीरा (एक सिपाही) के साथ गुत्थमगुत्था होगया। शेर की गरज सुनते ही मैं टीले से झाडी की

और लपका कि इतने मे बन्दूको के फैर की आवाज आई। मैं उस तक पहुँचता हूँ तब तक तो शेर ढेर होचुका था और हीरा बुरी तरह घायल। उस बहादुर ने शेर के कान दोनो हाथो से पकड़ लिये थे, और छाती पर चढ़ बैठा था। मगर वह इस बुरी तरह घायल हुआ था कि राम-राम करके बचा और छह महीने मे जाकर बिस्तर से उठा।

हीरा की बहादुरी मेरे हृदय मे अङ्कित होगई। यह भाव जी मे आया कि मुझे भी कहीं ऐसा अवसर आवे तो मैं भी ऐसी निडरता व दिलेरी का परिचय दूँ। जब कभी कोई भय या भय की आशंका सामने आती है तो यह दृश्य मेरी आंखो के सामने आजाता है व मुझे साहस प्रदान करता है।

—:६:—

सात्विक भोजन

काशी के अपने 'जीवन' की कुछ घटनाओ व अनुभवो का उल्लेख करना जरूरी है, जिन्होंने मेरे जीवन को साहस व अहिंसा की ओर प्रेरित किया है। एक है दिवेकर जी की दिनचर्या। ये ग्वालियर के विक्टोरिया कालेज मे अध्यापक थे। राजनैतिक षड्यन्त्र मे गिरफ्तार हुए और शायद १॥ साल की सजा पाई थी। छूट कर हिन्दूकालेज मे एम० ए० मे भर्ती हुए थे। जब वे बनारस आये ही थे कि मेरा परिचय होगया। एक तो दोनो ग्वालियर-राज्य के, फिर देश-भक्तो की परीक्षा में पास। बंगमंडल से ही मेरे हृदय मे बगाल व महाराष्ट्र के बलिवीरों के प्रति आदर-भाव पैदा होगया था। सावरकर, कन्हाईदत्त, नरेन्द्र गोसाई, इत्यादि के नाम सुनने से एक अजीब भक्ति-भाव मन मे लहराने लगता था। दिवेकरजी को देख कर स्वभावतः ही मेरे दिल मे एक आकर्षण हुआ। उन दिनों उन्हे ४) मासिक की एक ट्यूशन थी। दोनों दफा लूखी बाटी, आम के पने के साथ खाते हुए मैंने उन्हे देखा। खुद हाथ से बनाते थे। हर काम खुद

१—१६११ से १६१४ ई० तक।

हाथ से करते थे और वह भी इस स्पिरिट से कि दूसरो लि
उनकी हर बात नमूना होती थी। सुबह ३ बजे से उठ कर पढ़ते
से पहले गगा स्नान करते। मैं भी उनके साथ अक्सर सोया करता जि
रात मे उठ कर उनके साथ कुछ पढ सकू। वे पढ़ाई मे भी व 'औदुम्बर'
के सपादन मे भी मेरी हर तरह सहायता करते। अपना प्रिय शिष्य समझते
थे। उनकी सादगी, श्रमशीलता, उच्च विचार, नियम-निष्ठा, पवित्रता
एक से एक बढ़ कर थे। इनके सहवास व बरमडल के सस्कारो से मेरे मन मे
यह भावना दृढ़ हुई कि मैं लोकमान्य की तरह देश-सेवा करूं। 'केसरी'
की तरह हिन्दी मे अखबार निकालू। इसके लिए यह तय किया था कि
बी० ए० करके लोकमान्य के पास ही कुछ समय रह कर अखबारनवीसी
व देश-सेवा की प्रत्यक्ष तालीम लू। आगे चलकर यह संकल्प दूसरी तरह
से पूरा हुआ। दिवेकरजी के जीवन ने मेरे जीवन को आदर्श की तरफ
खींचते रहने मे बड़ा काम किया। मुझे विश्वास होता है, और दिवेकरजी
भी इस बात को मानते हैं, कि यदि वे कर्वे साहब के पास[1] न चले
गए होते तो आज वह बापू के निकटवर्तियो मे होते।

हम लोग दूध विनायक पर किबे के बाड़े में रहते थे। वहा मन्दिर के
पुजारी थे भडकमकर। उन्हे हम सब मास्टर साहब कहते थे– मन्दिर में
ही एक छोटी-सी चटशाला उन्होंने खोल रक्खी थी। काशी के 'गुरुओं'
की तरह वे भग-बूटी, जर्दा-तम्बाकू, सिगरेट-बीड़ी सब गुण-निधान थे।
जजमानों के लिए 'बूटी' छानते व खुद भी चढाते। दिन मे कई बार
नम्बर आ जाता। उनका एक भतीजा था महादेव। वह बीडी पीने लगा।
मास्टर साहब ने दिवेकर जी से शिकायत की। उन्होने कहा—जिसके
चचा सब गुण-निधान हो, वह एक गुण से भी गया! मास्टर साहब के

१–दिवेकरजी एम० ए० करके म्योर सेन्ट्रल कालेज में प्रोफेसर हुए
थे—बाद में वे अध्यापक कर्वे के साथ महिला विद्यालय में काम करने
पूना चले गए। १४ साल तक वहां रहे। आजकल माधव कालेज उज्जैन
के प्रिंसिपल हैं।

दिल को बड़ी चोट लगी। उन्होंने उसी क्षण संकल्प किया कि आज से सब छोड़ा। हमें विश्वास नहीं हुआ। हमने कहा—मास्टर साहब, पान तम्बाकू की छुट्टी रखिए। सब व्यसन एकसाथ नहीं छूट सकेंगे। लेकिन उस तेजस्वी ब्राह्मण ने सबका एकदम बहिष्कार कर दिया—यहातक कि जजमानों को भंग घोटकर पिलाते, मगर उनके बहुत दबाने पर भी खुद नहीं पीते। बरसों तक उन्होंने इस व्रत को निबाहा। मेरे जीवन में तो मैंने पहला ही उदाहरण यह देखा। तुल जाने पर मनुष्य क्या नहीं कर सकता?

हम लोगों की मण्डली के सादे, व्यसनहीन, पठन-पाठनमय जीवन की छाप, जो हमारे सम्पर्क में आता उसपर पड़ती। मेरे रिश्ते के एक बड़े भाई 'औदुम्बर' में काम करने के लिए आए थे। वे सिगरेट पिया करते थे। जब भड़कमकर ने प्रतिज्ञा की तो मैं उन्हें ताने-उलहने से इशारा करने लगा। एक रोज उन्होंने भी सिगरेट न पीने का वादा किया, मगर निभा नहीं। इससे इतने शर्मिन्दा होते थे कि मेरे सामने कभी सिगरेट नहीं पीया, जैसे किसी बड़े का अदब करते हों।

स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट, प० रामचन्द्र शुक्ल, श्रीजयशंकर 'प्रसाद' डा० लक्ष्मीचन्द्र, बा० श्यामसुन्दरदास, तथा विद्यमान पं० रामनरायण मिश्र, रायकृष्णदास, डा० भगवानदास के परिचय में आने का इन्हीं दिनों अवसर मिला। प० बालकृष्णजी बड़े खरे आदमी थे। कहते, हिन्दुस्तान के मा-बाप गोली मार देने लायक हैं। वे बचपन में अपने लड़के-लड़कियों की शादी करके बड़ा अनर्थ करते हैं। डा० लक्ष्मीचन्द्र कहा करते थे कि मैंने विज्ञान में दुनिया की बड़ी से बड़ी डिग्रियां प्राप्त की हैं लेकिन मैं अनुभव करता हूँ कि ये कालेज—विश्वविद्यालय बेवकूफ बनाने के कारखाने हैं।

'औदुम्बर' के सञ्चालन-काल के कुछ संस्मरण अब भी मेरे दिल को उभार दिया करते हैं। प० देवीदत्त शुक्ल (सरस्वती-सम्पादक) उन दिनों काशी में संस्कृत पढ़ा करते थे। उनकी 'ब्राह्मण' नामक कविता शायद पहली 'औदुम्बर' में छपी थी। बाबू श्रीप्रकाश के कुछ लेख पहली बार

'औदुम्बर' के द्वारा हिन्दी-जगत् के सामने आये। 'औदुम्बर' के लिए दिवेकरजी ने हिन्दी लिखना सीखा। 'औदुम्बर' की सेवाओं ने मुझे आचार्य द्विवेदीजी की सेवा मे पहुचाया।

इस काल ने मेरे भावी जीवन को गढने मे बडा काम किया है। उन दिनो काशी मे आर्य-समाज व सनातन-धर्म के विद्वानो के खूब शास्त्रार्थ हुआ करते थे। एक बार आर्यमुनिजी व पं० रामावतार शर्मा का शास्त्रार्थ हमने टाउन हाल मे सुना था। पं० रामावतार शर्मा भारत में पहले एम० ए० व साहित्याचार्य थे। दूसरे हुए थे दिवेकरजी। शर्माजी स्वतंत्र व मौलिक विचारक थे। उन्होने 'प्रत्यक्ष दर्शन' नामक एक नवीन दर्शन की रचना की थी। उसीके सम्बन्ध मे यह शास्त्रार्थ हुआ था। आर्य-समाज मे उन दिनो स्व० पं० केशवदेव शास्त्री बहुत चमक रहे थे। बडे होनहार मालूम होते थे। उनकी प्रतिभा व तेज मुझे ऐसा लगता था कि ये दूसरे दयानन्द होगे।

यही स्वामी सत्यदेवजी से परिचय हुआ। अमरीका से लौटने पर उन्होंने काशी मे एक आश्रम या सत्संग जैसा शुरू किया था। भिन्न-भिन्न विषयो पर व्याख्यान या उपदेश देते थे। उनके वहा के प्रथम भक्तो मे मै भी था। मैंने शुरू से ही इस बात का ध्यान रक्खा था कि सगत अपने से बड़े, अच्छे व ऊचे लोगो की करनी चाहिए। भले ही उनके समाज मे हम छोटे, क्षुद्र, या हेय भी समझे जावे। इससे ज्ञान, अनुभव, सस्कारिता की वृद्धि तो होती ही है. अभिमान नही बढने पाता। यही कारण है जो इतनी छोटी उम्र में मैं इन बड़े लोगो के सम्पर्क में आ गया और इनके जीवन, सत्सग व उपदेशो से लाभ उठाने का प्रयत्न किया। किसी भूखे-प्यासे की तरह मैंने काशी के वातावरण से जितना सात्विक व पौष्टिक खाद्य—पेय मिल सकता था,—पाने मे कसर नही रक्खी थी।

बापू के दक्षिण-अफ्रीका के सत्याग्रह की भनक कानों मे आती रहती थी। कोई नई चीज बन रही है ऐसी छाप हृदय पर पडती थी। निजी जीवन मे तो दूसरो को कष्ट न पहुँचने देने की वृत्ति बढ़ रही थी—मगर सार्वजनिक,

खासकर राजनैतिक जीवन मे 'हन्ते को हनिये, पाप दोष ना गनिये' के सिद्धान्त का बोलबाला था। जब लोकमान्य तिलक, प्रोफेसर परांजपे की गिरफ्तारी की खबर मैंने बरमडल मे सुनी थी तब मुझे ऐसा लगा था मानो कोई अनर्थ होगया—अघटित घटना होगई। खून ऐसा उबलने लगा मानो बुखार आगया हो। माडले मे बन्द लोकमान्य मेरे हृदय-देव बने हुए थे।

—:१०:—

मातृ-हृदय

मैट्रिक कर चुकने के बाद मैंने पूना जाकर बी० ए० करने की योजना बनाई। इन्हीं दिनो आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी ने दिवेकरजी से कहा कि मुझे एक अच्छे सहायक की जरूरत है। दिवेकरजी 'सरस्वती' मे लिखने और द्विवेदीजी के सम्पर्क मे आने लगे थे। उन्होने मुझसे कहा—'सरस्वती' मे जाते हो? तीन साल पूना मे बी० ए० पास करोगे तब तक तीन साल मे द्विवेदी जी के पास पत्र-सपादन का अमली अनुभव होजायगा। आखिर डिग्री लेना तो तुम्हारा उद्देश्य है नहीं। हिन्दी में पत्र निकालना है तो लोकमान्य की अपेक्षा द्विवेदीजी से अधिक सीख सकोगे।' 'औदुम्बर' बन्द होचुका था—मुझे यह सलाह जंच गई। द्विवेदीजी ने मुझसे पूछा—क्या लोगे? मैंने लिखा—रोटी-कपडा। उनके पास जाते हुए लोगो ने डराया—दुर्वासा, है—तीन दिन मे छोड-कर भागोगे। कोई उनके पास नहीं टिकता। इससे मेरा उत्साह दूना बढ गया। मेरी एक अजीब खासियत है। जब मेरे सामने कोई कष्ट, संकट या खतरे की दलील रखता है तो मुझे दूना उत्साह होता है। मनमें आता है—करके देखें तो आखिर क्या डर या खतरा है। काका साहब शिक्षा दिया करते थे कि खतरे के नाम से नहीं डरना चाहिए। खतरा कल्पना मे ही भयकर होता है। एक बार बरमडल मे हम दोनों घूमने निकले। एक कुए मे नीचे साप जैसा कुछ दिखाई देता था। लोग नीचे उतरने से डर रहे थे। काका साहब ने मुझे भेजा कि जाओ नीचे

जाकर देखो, क्या है ? मै साहस करके चला गया तो एक कपड़े की चिन्दी पड़ी हुई थी। यह घटना मुझे याद आगई। मैंने मित्रो से कहा, तो अब जरूर द्विवेदीजी के पास जाऊगा। आखिर वे शेर तो है ही नहीं, जो फाड खायेगे। काम ही तो कसकर लेगे। कभी गुस्से मे सख्त-सुस्त कह लेगे। मै शिष्य-भाव से जारहा हूँ। उनके जूते उठाने व पोछने मे भी मुझे शर्म नहीं आने की। तब मुझे उनका आशीर्वाद क्यो न मिलेगा ?

उन्होने सहायक सपादक की जगह मेरी नियुक्ति की। पहले एक मास तक प्रयाग—इडियन प्रेस मे रक्खा। जुही से काम भेज दिया करते थे। डा०जगदीशचन्द्र वसु का एक विज्ञान-सम्बन्धी तथा महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री का इतिहास-सम्बन्धी व्याख्यान अंग्रेजी मे भेजा, कि इनका अनुवाद करके भेजो। भारत-सरकार की शिक्षा-विभाग व जेल-विभाग की रिपोर्टें भेजी कि इन पर 'सरस्वती' के लिए टिप्पणी लिखो। विज्ञान-सम्बन्धी लेख व रिपोर्टें, मैंने समझा, मेरी परीक्षा के लिए भेजी थी। पहले तो मन मे आया कि लिख दू, विज्ञान मे मेरी गति नहीं है, और ऐसी टिप्पणिया आपके नजदीक रहने पर लिख सकूगा। मगर मैंने सोचा कि यह तो बिसमिल्ला ही गलत हो जायगा। मैंने कोष के सहारे विज्ञान-संबंधी भाषण को ५-७ बार पढकर समझने का यत्न किया। फिर एक साइन्स मास्टर को खोज निकाला, जिन्होने सारा लेख समझा दिया। मेरा अनुवाद पडितजी को पसन्द आया। टिप्पणियो के लिए मैंने 'सरस्वती' की पिछले वर्षों की फाइले निकाल कर पडितजी की तत्सम्बन्धी टिप्पणिया देखीं। उनसे मुझे काफी सहारा व मसाला मिल गया।

थोडे ही दिन मे पडित जी खुद इलाहाबाद आये। कहा—हम तो जगल मे—जुही मे—रहते है, चना-चबेना जो कुछ मिलता है, खा लेते है। तुम वहा रह सकोगे ? मैंने कहा, मैं तो वहीं आपके पास ही रहने के लिए आया हू। मैं शहर की बस्ती से ऊब गया हू। पाव पसारने भर के लिए जगह मिल जाय तो बहुत। आप चने-चबेने से काम चला

लेते हैं तो मेरे लिए घास-फूस काफी होगा।

"तो मुझे लिख देना तुम्हारे लिए क्या-क्या इन्तजाम चाहिए, मैं सब कर रक्खूंगा।" उन्होंने आश्वासन-सा देते हुए कहा।

जब मैं जुही पहुंचा तो मेरे लिए सब चीजें तैयार मिलीं। पंडितजी ने बड़े अपनेपन से कहा—जो जरूरत हो मुझसे कह देना। संकोच मत करना। अपना घर समझना। बार-बार पूछने की मुझे आदत नहीं है।

"आप बेफिक्र रहें। मैं अपना सब काम खुद कर लूंगा। मुझे अपने लिए किसीको कष्ट देने की आदत नहीं है।"

रहने का स्थान तो मुझे सचमुच ऐसा मिला कि दिन मे पाव पसारने की भी जगह नहीं थी। कमर्शल प्रेस के कंपोजखाने मे। कंपोजीटरों की तिपाई मेरी कुरसी बनी व एक डेस्क मिला, जिसके नीचे ईंटें चुनकर मैंने ऊंचा बना लिया। दिन मे यहा काम करता, रात को मैदान मे सो रहता। मैंने दो निश्चय कर लिये थे—पंडितजी कितना ही और कैसा ही काम लें, कभी नाक-भौंह नहीं सिकोड़ूंगा। कैसी ही असुविधायें हों, कभी पंडितजी से शिकायत या कोई फरमायश नहीं करूंगा। पंडितजी ने काम भेजा नहीं, मैंने चट से करके लौटाया नहीं। शाम को काम भेजते तो रात को ही करके लौटा देता। १०-१२ दिन के ही बाद पंडितजी ने कहा—भई, इतनी मेहनत क्यों करते हो! जिसपर मैं जरूरी लिखूं उसे जल्दी कर दिया करो, वर्ना अपनी फुरसत से किया करो। गणेशजी[1] ने मुझसे कहा—मेरे बाद पंडित जी ने तुम्हींसे ऐसा कहा है। मैंने जवाब दिया—दूसरे लोग काम-चोर रहे होंगे। पंडितजी खुद डटकर काम करते हैं, तो दूसरे से भी ऐसा ही चाहेंगे। और मैं तो इसीलिए आया हूं कि खूब सीखूं और अनुभव लूं।

मैंने अनुभव किया कि पंडितजी की ऊपरी सख्ती या उग्रता में बड़े कोमल व वत्सल पिता का ही नहीं माता का हृदय लहराता था। पंडितजी के भानजे-

१—शहीद गणेशशंकर जी विद्यार्थी। मुझसे पहिले वे पण्डितजी के सहायक रह चुके थे।

मानजी की बीमारी के समय इसका पता अच्छी तरह लगता था। मार्तण्ड को डबल निमोनिया होगया। पंडितजी ने जिस चिन्ता, सावधानी व जिम्मेदारी से उसकी चिकित्सा करवाई, वह सगे पिता से बढ़कर थी। एक रोज बिटिया[1] ने कहा—उपाध्यायजी, आज मामा से घर पर दाल नहीं खाई गई। मैंने पूछा—क्यो? उसने कहा—कहते रहे, आज मार्तण्ड दाल के लिए मचल रहा था—उसे दाल नही मिली, मुझसे खाई नही जाती। यह माता का हृदय बोल रहा था। ऊपर से कठोर दीखने वाले कई लोगो मे मैंने ऐसा मातृ-हृदय देखा है।

पंडितजी का मुझपर इतना विश्वास बढा कि एक बार दौलतपुर जाते हुए अपनी लाइब्रेरी की चाबी मुझे दे गये। कहा—जो किताब चाहो पढना। किसीको देना चाहो दे देना। बाबू भगवानदास[2] ने यह सुना तो कहने लगे—पंडितजी ने यह आजादी पहली बार आप ही को दी है। पुस्तकें वे किसीको छूने तक नहीं देते थे।

उनकी इस कृपालुता व विश्वास ने एक अजीब परिस्थिति पैदा कर दी थी, जिसका बड़ा मधुर अन्त हुआ। उससे मुझे पता लगा कि सरलता व भलमनसाहत मे कितना बल व प्रभाव है। कई बार ऊपर से कठोर दिखाई देने वाले व्यक्तियो मे कोमलता व करुणा के रूप मे अहिंसा की धारा फाल्गु नदी के सदृश बहती रहती है। अहिंसा का संबंध ऊपरी आवरण, बाहरी आचार से उतना नहीं है, जितना भीतरी भावना—वृत्ति मे है।

१—कमला – पंडितजी की बड़ी भाजी। २—कमर्शल प्रेस के मैनेजर।

—:११:—

हृदय-परिवर्तन

पण्डितजी की पूंजी से कमर्शल प्रेस खुला था। बाबू भगवानदास उसके मैनेजर थे। वे पण्डितजी के गृह-प्रबंधक भी थे। पण्डितजी को वे पिता की तरह मानते थे। पण्डितजी भी उनपर भरोसा रखते थे। जब मुझपर पण्डितजी का प्रेम व विश्वास बढ़ने लगा तो भगवानदासजी को कुछ खटका हुआ। कुछ ऐसे कारण पैदा हुए, जिनका मुझसे कुछ वास्ता नहीं था, जिससे पण्डितजी ने यह प्रस्ताव रक्खा कि 'भगवानदास' प्रेस के बारे मे तुम्हारी-हमारी लिखा-पढ़ी हो जाय।' पण्डितजी ने भगवानदासजी से कुछ ऐसा व्यवहार भी शुरू किया जिससे उनका खटका और बढ़ गया। दस्तावेज़ का स्टाम्प लिखने के लिए पण्डितजी ने मुझे दिया। यह देखकर तो भगवानदासजी को पूरा शक होगया कि मैं भीतर-ही भीतर कुछ कारस्तानी कर रहा हूं और पण्डितजी का प्रेम भगवानदासजी से कम कराके अपनी तरफ खींच रहा हूं। इधर दस्तावेज़ की एक शर्त मुझे कड़ी मालूम हुई। पण्डितजी ने भगवानदासजी का वेतन उसमे बहुत कम रक्खा था। मैंने जाकर पण्डितजी से कहा कि भगवानदासजी आपको पिता की तरह मानते हैं। बाल-बच्चेदार है, इतने वेतन मे कैसे निभेगी? पण्डितजी ने कहा—हमसे तो उन्होंने कुछ नहीं कहा। मैंने जवाब दिया—वे क्या कहते? यह तो आपके सोचने की बात है। पण्डितजी को मेरी दलील तो जंची नहीं मालूम हुई। लेकिन कहा—अभी तो तुम वैसे ही नकल कर दो। इसके बाद भगवानदासजी दुखी रहने लगे। मुझे भी इससे दुःख रहा।

इसके बाद पंडितजी दौलतपुर गये। कुछ दिनों बाद मुझे भी वहां बुलाया। बा० भगवानदास दुःख व निराशा से पंडितजी के प्रति कुछ ऐसी बातें कह जाते जो मुझे अच्छी नहीं लगती। मैं उन्हें कहता—पण्डित जी कैसे ही सख्त हो, और मै भी मानता हूं कि इस मामले मे

उन्होंने आपके साथ न्याय नहीं किया है, फिर भी आपने उन्हे पिता की तरह माना है। उनके प्रति अपने भाव में आपको फर्क नहीं आने देना चाहिए।

दौलतपुर मे पण्डितजी ने मुझसे पूछा—भगवानदास का क्या हाल है ? कुछ कहते थे ?

'कहते क्या थे ? दुखी रहते है। इतनी तनख्वाह मे काम कैसे चले ?'

'तो हमसे कहते क्यो नही ?'

'कहें क्या—आप उनकी हालत क्या नही जानते ?'

'तो तुम्हारी राय मे क्या होना चाहिए ?'

मैंने कहा, 'कम से कम ‥ ‥तो होने ही चाहिए।'

अच्छा तो जब हम जुही आवें वे हमसे कहे। इतना ही कर देंगे।

जब मैं जुही लौटा तो भगवानदासजी ने पूछा—पण्डितजी मेरे बारे मे कुछ कहते थे ? मैंने कहा—हा। 'तो क्या कहते थे' ? 'तनख्वाह के बारे मे कहा कि भगवानदास हमसे कहते क्यो नही ?' अब की पण्डितजी आवे तो आप कुछ कहिए।'

'नही, मैं कुछ नही कहूँगा। मैं उनके स्वभाव को जानता हूँ। वे एक पाई ज्यादा नही देंगे।'

मैंने जोर देकर कहा—'आपका बिगड़ता क्या है ? इससे कम तो कर नहीं लेंगे ? और मैं समझता हूँ आप भी पण्डितजी के साथ न्याय नहीं करते। आप एकबार कह तो देखिए।'

पण्डितजी दौलतपुर से आये व भगवानदासजी प्रेस के कागजात लेकर उनके पास गये। जाते समय मैंने उन्हें याद दिला दिया कि पण्डितजी से तनख्वाह के बारे मे जरूर कहना।

भगवानदासजी पण्डितजी के कमरे से हंसते व पुलकित होते हुए निकले। कहा—पण्डितजी ने ‥‥कर दिये।

मै तो पहले से ही आपसे कह रहा था कि उनसे एकबार कहिए तो !

× × ×

कुछ दिन के बाद बाबू भगवानदासजी ने मेरे सामने एक प्रस्ताव रक्खा कि प्रेस मे पण्डितजी, मैं व आप तीनो साझी होजायं। मैंने कहा—मैं यहा जिन्दगी बसर करने के लिए नही आया हूं। मैं तो सीखने व अनुभव प्राप्त करने के लिए आया हूं। मेरा कार्यक्षेत्र तो दूसरा है। प्रेस या पण्डितजी का जो काम हो आप मुझसे लेते जाइए। मै साझे-वाझे के झगडे मे नही पड़ता।

उस दिन या दूसरे दिन शाम को हम दोनो साथ पाखाना फिरने जगल मे गये। रास्ते मे भगवानदासजी ने कहा—पण्डितजी मैं आपका बडा अपराधी हूं। मेरे दिल मे बडा पाप भर गया था। मै समझ गया था कि आप मेरे खिलाफ कोई षड्यन्त्र कर रहे हैं, अब मुझे विश्वास हो गया कि मेरा यह कितना भ्रम था। आपकी सरलता व सचाई की मै दाद देता हूं। मै आपके सामने शर्मिन्दा हूं।

मेरे लिए यह बोझ असहनीय हो रहा था। मैने उनसे कहा—बाबू साहब, यह सब मुझसे मत कहिए। मेरे जी मे न जाने क्या-क्या होता है। आपके दिल मे जो कुछ होरहा था उसे सुनने की मुझे इच्छा नही है। आपके दिल को संभालना आपका काम है, सो आप कीजिए। मुझे ऐसी बाते सुनना अटपटा लगता है।

बाबू भगवानदास के इस हृदय-परिवर्तन ने मेरे सामने एक प्रकाश-पथ खोल दिया। मुझे तो आखिरी दिन ही और सो भी उन्हीके कहने से पता पडा कि उनके दिल मे साप-बिच्छू भर गए थे। अब मैंने समझा कि साझे का प्रस्ताव शायद मेरे दिल की परीक्षा के लिए रक्खा गया था। मैंने इस घटना से यह नतीजा निकाला कि मनुष्य को अपनी भलाई पर ही कायम रहना चाहिए। कोई बुराई करता है या बुरा समझ लेता है तो वह बुराई ही उससे हिसाब चुकता कर लेती है।

अब मै सोचता हूं, तो यह अनजान मे अहिंसा-वृत्ति का ही एक मधुर फल मालूम होता है।

: १९ :

धर्म की शोध

धर्म की ओर बचपन से ही मेरी रुचि है। पिताजी सुबह उठते ही रोज स्तोत्र-पाठ किया करते थे। सुनते-सुनते मुझे भी कई स्तोत्र याद हो गए थे। रामरक्षा, शिवकवच, नर्मदाष्टक मुझे बहुत भाते थे। जीजी कहा करती थी कि किसी साधु ने पिताजी को आशीर्वाद दिया था कि तुम्हे अच्छा पुत्र होगा। साधु-सन्तो व सत्पुरुषो की सगति मे मेरा बडा मन लगता है। उनके प्रति सहज ही भक्तिभाव का अनुभव हृदय मे करता हूँ। यद्यपि मेरे हृत्पटल पर इन दिनो राष्ट्रीयता का रङ्ग चढा हुआ था और अब भी चढा हुआ है, तथापि धर्म-चिन्तन का जब मुझे मौका मिल जाता है तो मैं उसे छोड़ता नहीं हूँ। जुही मे मैंने गीता-रहस्य ध्यान से पढा और साथ ही राजवाडे का गीता-भाष्य भी। दोनो मराठी मे पढे थे। विवेकानन्द के व्याख्यान भी इन्ही दिनो पढने को मिले। मोरोपत की केकावलि की प्रोफेसर पराजपे कृत टीका भी पढी। शास्त्र-रहस्य, व रागिणी इसके पहले ही पढ चुका था। इसके फलस्वरूप धर्म-जिज्ञासा उत्पन्न हुई।

एक बार मै हमीरपुर की तरफ घूमने निकला तो मन मे आया कि धर्म की कई व्याख्यायें लोगो ने की है। अलग-अलग ग्रथों मे अलग-अलग मत हैं। हम स्वतत्ररूप से ही क्यो न सोचे कि धर्म आखिर क्या है? इन ग्रथकर्ताओ ने भी तो आखिर अपनी बुद्धि से ही धर्म का स्वरूप व लक्षण ठहराया है। तब हम भी अपनी बुद्धि से ही क्यो न इस प्रश्न को हल करे।

अब मैं सोचने लगा कि मनुष्य का धर्म कैसे जाना जाय? तो पहले यह सोचना चाहिए कि किसी वस्तु का धर्म जानने के लिए पहले क्या करना चाहिए। एक थाली मेरे सामने आई। यदि किसी अन-जान को थाली दी जाय तो वह इसका धर्म कैसे निश्चित करेगा? नीचे

की सतह और आसपास की ऊंची कोर या दीवार देखकर वह अनुमान करेगा कि यह किसी चीज को रखने के लिए बनाई गई है। अर्थात् उसकी बनावट पर से उसके धर्म का अन्दाज लगायेगा। इस निर्णय से मुझे कुछ समाधान हुआ। ऐसा मालूम हुआ कि हां, कुछ रास्ता हाथ लगा। अब मेरे सामने एक मेज आई। उसके पाये व ऊपर सपाट सतह देखकर यह अटकल होगी कि ऊंचे पर कोई चीज रखने के लिए यह बनाई गई है। तो हम मनुष्य के धर्म का विचार उसकी बनावट पर से करें। अब तो मुझे ऐसा लगा मानो मैदान मार लिया।

अब विचार आगे चला। तो मनुष्य की बनावट को देखें। उसमें कई इन्द्रियां हैं और वे सब चलती-हिलती व काम करती हैं। तो मन में यह खयाल जमा कि इन इन्द्रियों का जो व्यापार है उसे होने देना ही मनुष्य का धर्म है। लेकिन तब प्रश्न उठा कि इन्द्रियों के व्यापार तो अच्छे भी होते हैं और बुरे भी। तो क्या बुरे व्यापार भी धर्म हैं? हाथ से दान भी दिया जा सकता है और खून भी किया जासकता है, तो धर्म क्या हुआ? मुंह से गाली भी दी जा सकती है, रामनाम भी लिया जा सकता है, तो धर्म क्या हुआ? उत्तर मिला, इन्द्रियों का सद्व्यवहार या सदुपयोग धर्म होसकता है, बुरा व्यापार या दुरुपयोग नहीं। अब चित्त को समाधान होगया—यह निर्णय हुआ कि मनुष्य शरीर का—विविध इन्द्रियों का सदुपयोग मनुष्य का धर्म है। मन में खुशी हुई कि आखिर स्वतन्त्र रूप से विचार करते हुए एक नतीजे पर पहुंचे। इससे यह आत्म-विश्वास बढ़ा कि किसी भी विषय पर स्वतन्त्र रूप से सोचा व निर्णय किया जा सकता है। तबसे पढ़ने की बनिस्बत मनन करने की प्रवृत्ति और बढ़ गई।

बाद में मैंने यह सारी प्रक्रिया शायद दिवेकरजी को सुनाई थी तो उन्होंने किसी विदेशी तत्ववेत्ता का नाम लेकर कहा था कि उसने इसी ढंग पर कर्त्तव्य का विचार किया है। तब मैं अपने मन में थोड़ा-सा फूला भी कि एक तत्ववेत्ता की पद्धति से मेरी पद्धति मिल गई।

फिर यह सवाल खडा हुआ कि सदुपयोग व दुरुपयोग किसे कहे ? उत्तर सामने आया कि जिसका लोग आमतौर पर स्वागत करें वह सदुपयोग, जिसका विरोध करे वह दुरुपयोग। दान देने के लिए हमारा हाथ आगे बढ़ेगा तो सब उसको पसन्द करेगे, मगर कत्ल करने के लिए उठेगा तो विरोध होगा। किसीको गाली दी जायगी तो लोग विरोध करेगे, बुरा कहेगे, भगवान का नाम लिया जायगा तो लोग खुश होगे, अच्छा कहेगे। यह कोई वैज्ञानिक आधार नही था, व्यावहारिक था, मगर इससे मेरा काम चल जाता था और मुझे सन्तोष भी होगया था। मुझे धर्म की यह अच्छी काम-चलाऊ व्याख्या मालूम हुई। बाद में तो मैंने धर्म, नीति, अध्यात्म, आदि विषयो का भरसक इतना अध्ययन भी किया जिससे मेरा बौद्धिक समाधान होसका। सबका निचोड यह निकला कि धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, सुख-दुःख, ज्ञान-अज्ञान सबका आधार या ध्येय हमारा चित्त है। उसीको सम, शात, स्थिर बनाना सारे धर्मों के उपदेश का सार है। सद्गुणो की वृद्धि, दैवी सपदा का विकास, या सात्विकता के उत्कर्ष से ही ऐसी स्थिति को पहुँचा जा सकता है। और अहिंसा का उन सब मे पहला स्थान है।

—:१३:—

दौलतपुर में

पण्डितजी किरातार्जुनीय का अनुवाद करते थे। एक घण्टा रोज मुझे लिखाया करते थे। जब दौलतपुर गए तो उन्होने चाहा कि मैं भी वहा चलू। अपने मकान के पास मेरे लिए उन्होने एक फूस की झोपडी बनवाई, जिसका नाम पड गया 'हरिबाबू का बंगला'। दीवार मे कच्ची ईंटें वैसे ही जमाकर खडी कर दी गई थी। दौलतपुर गगा किनारे था। गगा पार करके वहा जाना पडता था। कुछ तो नाव से व एक-दो जगह वैसे ही छाती तक पानी मे चल कर पार की जाती थी।

खाना मैं अपने हाथ से बनाता था—दोनो जून। कभी मैंने आलस्य-

वश एक बार खाना बनाकर दोनो बार नही खाया । चौका, बरतन बहुत बार खुद ही किया करता था । दौलतपुर से कुछ दूर भोजपुर में हाट लगती थी और रोजमर्रा की जरूरत का बहुत-सा सामान आठवें दिन हाट से लाना पड़ता था । एक बार किसी कारणवश हाट से चीजे मगाना रह गया और एक दिन मेरी टपरिया में सिवा एक लौकी के खाने की कोई चीज नही रह गई । पण्डितजी के यहा से मगा सकता था, लेकिन सकोची और कुछ मनचले स्वभाव ने कहा—आज लौकी पर ही गुजर कर लो । लौकी पकाकर जब मैं खाने बैठा तो तकदीर से पण्डितजी आ गए । 'है, यह क्या ? आज सिर्फ लौकी ही लौकी ?' मुझ पर घड़ो पानी पड गया, मानो चोर सेंध के मुंह मे पकड़ लिया गया हो ।

'पण्डितजी, हाट से चीजे मगाना रह गई......'

'भले आदमी, घर मे क्यो नही कहला दिया—क्या घर पै चीजे नही रहती ?'

'हा, सो तो ठीक है, पर मैंने कहा चलो, आज लौकी पर ही गुजार दें ।'

'वाह—तुम खूब आदमी हो । बिटिया, देखो आज से जब उपाध्याय-जी खाना खाने लगे तब आकर देख जाया करो, दाल न बनावे तो दाल, साग न बनावें तो साग घर से दे जाया करो । इनका भरोसा मत किया करो ।'

पण्डितजी की इस उदारता ने मुझे शर्मिन्दा तो किया ही, सदा के लिए उपकारबद्ध भी कर लिया । उनके वात्सल्य का एक और नमूना याद आ रहा है ।

पण्डितजी को आम खाने का बडा शौक था । मीठे व पतले रस के आम बहुत पसन्द करते थे—ऐसे ही आम दरअसल गुणकारी होते है । छह महीने वे आम खाकर ही रहते थे । आम चूस कर ऊपर से दूध पीते थे । सुबह के भीगे आम शाम को, शाम से भिगोये आम सुबह चूसते थे । रस नही पीते थे । ऐसे मीठे आमो के कई बाग खरीद लिया

करते थे। मीठे फल के आम अपने लिए सुरक्षित रख कर सारा बाग गाव के लोगो के लिए छोड़ देते थे। अपने लिए सुरक्षित आमों मे से दूसरों को प्रसगवश ही दिया करते थे। एक बार न जाने क्या मन मे आई। मुझ से पूछा—हमारे खाने के आम कभी तुमने खाये है या नहीं। मैंने उत्तर दिया—नहीं तो। तो तुमको कौन-कौन से आम यहा के पसन्द आये? मैंने कहा—मै ठीक नहीं कह सकता। 'क्यो?' 'मैंने बहुत कम आम यहा खाये है।' 'एं—क्या कहते हो; इतने आम लोग मुफ्त खाते है और तुम क्यो नहीं ले आते हो?' मैंने नीचा सिर कर लिया, कोई जवाब न बन पडा।

उन्होंने पुकारा—बिटिया, देखो आज से दोनो जून उपाध्यायजी को हमारे खाने के आमो मे से कुछ आम दे आया करो। इन्होंने तो अभी तक यहा पेट भर के आम खाये ही नहीं।

किसी आदमी को आवाज देकर कहा—'देखो, उपाध्यायजी के लिए बाग से अच्छे आम ले आया करो। ये बहुत सकोची हैं।'

वास्तव मे मेरा स्वभाव इतना सकोची है कि अपनी मा व पत्नी से भी सहसा कोई चीज नहीं मागता। तकलीफ चुपचाप सह लेना अच्छा मालूम होता है, मगर किसीसे कहना व उसे कष्ट मे डालना नहीं सुहाता। इसस्वभाव के लिए बरमण्डल की एक घटना कारणीभूत हुई है।

मुझे होरहा (हरे भुने हुए बूट) खाने का बडा शौक था। कच्ची भुनी मूगफली, भूमर मे भुजे आलू मुझे अच्छे लगते है। बरमंडल में एक बार होरहा घर मे आया। दिन मे मैंने खूब खाया। जब सोने लगा तो फिर खाने का मन हुआ और काकी से मैंने होरहा मागा। उन्होंने एक सूप मे लाकर रख दिया। मै सब खा गया। सुबह मेरे चचेरे भाई-बहनों ने होरहा मागा तो काकी ने उन्हे पीट दिया। होरहा था नहीं, रात को मैं सब सफा कर गया था। इस घटना का मुझे बडा पछतावा हुआ। रात को मै यह नहीं समझा था कि काकी ने सारा का सारा होरहा मुझे दे दिया है। मुझे कुछ ऐसा लगा कि काकी ने नाराज होकर

सब का सब मुझे दे दिया। दिन में खूब खा लेने के बाद फिर रात में मांगने से उनका नाराज होना था भी स्वाभाविक। मैंने अपनी इस भूल को इस जोर से महसूस किया कि मुझे कोई फरमाइश करते समय यह डर लगने लगता है कि यह अनुचित या असामयिक तो नहीं हो जायगी। भोजन करते समय इस बात का बडा खयाल रहता है कि कही मांगने से पीछे वालो के लिए कम तो नही रह जाय। इसलिए आमतौर पर जो-कुछ परोसने के लिए सामने आ जाता है, उसी तक अपनी इच्छा को सीमित रखता हूं।

'हरि बाबू का बगला' कच्ची ईंटो का था। बारिश के दिन आये। एक रोज रात को जोर की बारिश हुई। नीचे जमीन मे पानी बह आया। रात का वक्त। मैं खटिया पर सो रहा था। एक तरफ की कुछ ईंटे गल कर गिर पडी। अब मुझे डर हुआ कि सारी दीवार कहीं ढह गई तो मेरी खटिया इसीमे दब जायगी। खटिया टपरिया के बीचो-बीच बिछाई व पड रहा। नींद तो कहा से आती। एक-दो बार विचार हुआ कि पण्डितजी को पुकार लू। अव्वल तो आधी-बारिश में आवाज पहुं-चना मुश्किल थी, दूसरे यह विचार आया कि देखो परमात्मा क्या करता है! थोडी देर के बाद धडाम से एक तरफ की दीवार गिरी—तकदीर सिकन्दर थे कि वह झोपडी के अन्दर नहीं बाहर की तरफ ढही। अब पानी की बौछार मेरी खटिया तक सीधी पहुँचने लगी। इतने में दीवार गिरने की आवाज सुन कर पण्डितजी जग पडे। फौरन लालटैन लेकर आये। पूछा, क्या हुआ? मैंने हँस कर जवाब दिया—हमारा बंगला ढह गया।

सुबह गांव के बहुतेरे लोग 'हरिबाबू के बंगले' का तमाशा देखने जमा होगए। कहते—ईश्वर ने खैर की, कहीं दब जाते तो! बडो के पुण्य ने बचा लिया। मैंने जवाब दिया, पण्डितजी के पुण्य ने।

दूसरो को कष्ट मे न डालने का भाव अहिंसा का ही एक अंग है। हिंसावादी को जो आनन्द या सन्तोष दूसरों पर प्रहार करने में, कष्ट पहुं-

चाने मे होता है वही अहिंसात्मक व्यक्ति को खुद कष्ट उठा लेने मे होता है। सर्वतोमुखी सयम अहिंसा की स्थूल साधना है और असयम हिंसा की तरफ ले जाने वाली प्रवृत्ति है।

—:१४:—

तुनक-मिज़ाजी

तुनक मिजाजी अभिमान है, और अभिमान अखीर मे जाकर हिंसा का ही एक रूप होता है, यह बात आज जितनी साफतौर पर समझ मे आरही है उतनी उस समय नहीं थी, जबका किस्सा मैं लिख रहा हूँ। हमारे आसपास की सत्य बातो का हमारे मन पर असर होना—होने देना एक बात है, व उस असर से बिना ज्यादा गहरा बिचार किये कोई फैसला कर लेना दूसरी बात है। पहली वृत्ति सत्य-साधक या सत्याग्रही के लिए बहुत जरूरी है, उसके बिना वह सत्य को न तो पा ही सकता है, न साध ही सकता है। सत्य सूर्य की तरह है, जिसकी हजारों-लाखो किरणें चारो ओर फैल रही हैं। सूर्य अपने चारो ओर किरणो को फेकता है, परन्तु सत्याग्रही अपने चारो ओर से प्रकाश-किरणो को ग्रहण करता है, आने देता है व उनके प्रकाश मे अपनेको—अपनी हर बात को हमेशा जाचता-परखता रहता है व उसके फल-स्वरूप अपने विचार-आचार-वृत्ति में फर्क करता रहता है। इसीसे वह नित नूतन, सजीव, आगे बढ़ता रहने वाला होता है। दूसरी तरफ, जो व्यक्ति सत्य की प्रकाश किरणो को—आसपास की घटनाओ, मित्रो की सलाहो, तटस्थो की आलोचनाओं, विरोधियो की निन्दाओं, उपहासो, अपमानो, आदि को अपने पर पड़ने नही देता, दूर से ही रोक देता है, वह अन्धेरे मे ही पड़ा रहता है व प्रगति नही कर पाता। किन्तु जो इन घटनाओ या आलोचनाओ आदि से भड़क कर झट से कोई कदम उठा लेता है, वह धक्के खाता है, व पीछे थोड़ा-बहुत पछताता है। यही तुनक-मिजाजी है। बहुत अर्से तक मैं इसका शिकार रहा। अब भी जब मुझे ऐसा भास

होने लगता है कि सामने वाला मुझे दबा रहा है, धौंस से काम लेना चाहता है, किसीकी निन्दा करता या चुगली खाता है, बेकसूर ही मुझे उलहना देता है, जवाब तलब जैसा करता है, डांटना चाहता है, तो मेरा पारा चढने लगता है। लेकिन अब मैं झट से कोई फैसला नही कर लेता। अपनी तुनक-मिजाजी की कुछ घटनाये इस समय याद आरही है।

आचार्य द्विवेदीजी मुझे पुत्र की तरह चाहने लगे थे। मेरे घर की बीमारियो वगैरा: के कारण दो-दो महीने ऐसे बीत जाते जब मै 'सरस्वती' का कुछ काम न कर पाता था। परन्तु वे खुशी खुशी ऐसा होने देते थे। बल्कि जब मैं ऐसे मौको पर काम मे लगने की कोशिश करता तो मुझे जता कर मना कर देते। कभी उन्होने मुझे डाट कर या झिडक कर कुछ न कहा। लेकिन एक अवसर ऐसा आ ही गया। १९१८ मे इन्दौर मे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन महात्माजी के सभापतित्व मे होने वाला था। स्वर्गीय डाक्टर सरजूप्रसादजी का पत्र मुझे मिला कि मैं एक मास पहले इन्दौर आकर सम्मेलन के लिए काम करू। मेरा जी बहुत हुआ; परन्तु उन दिनो द्विवेदीजी की सम्मेलन वालो से कुछ अनबन थी। मुझे आशा नही थी कि वे मुझे इतनी लम्बी छुट्टी देगे। परन्तु सम्मेलन मे जाने का तो निश्चय मैंने अपने मन मे कर लिया था—भले ही द्विवेदीजी मना करे, या मुझे इस्तीफा ही देना पडे। इन्दौर—मेरे घर मे सम्मेलन हो, गाधीजी जैसा कर्मवीर सत्याग्रही—उस समय महात्माजी 'कर्मवीर गाधी' कहलाते थे—उसका सभापति हो, और मैं सम्मेलन मे शरीक तक न होपाऊ—यह कल्पना ही मेरे लिए असह्य थी। इत्तिफाक ऐसा हुआ कि सम्मेलन की तिथियो के कुछ दिन पहले ही द्विवेदीजी अपने घर दौलतपुर चले गए थे। बाद मे उनके व मेरे नाम विधिवत् निमन्त्रण इन्दौर से आया। इतना समय नही था कि मैं उनसे इजाजत लेकर इन्दौर जाता। अत: उनके नाम का निमन्त्रण-पत्र उन्हें भेजकर अपने इन्दौर जाने की इत्तिला उन्हें दे दी—लेकिन मैंने मन मे समझ लिय

था कि पण्डितजी को वह सहन न होगा और अब अपने को जुही छोड़ना पड़ेगी। मेरे सम्मेलन से लौटने के पहले ही पण्डितजी जुही आगये थे। लौटने पर जब पहली बार मैं उन्हे प्रणाम करने गया तो उन्होने त्यौरी चढ़ाके जरा तीखे स्वर मे, जो मेरे सम्बन्ध मे उनकी तरफ से नया था, मुझसे पूछा—'आप हमारी बिना इजाजत के इन्दौर कैसे चले गये?' उनका 'आप' शब्द मेरे लिए 'सजा' का काम देने लगा। मैंने जाब्ते की सफाई दे दी—इसके बाद उन्होने मुझसे कुछ नहीं कहा। मगर मुझे उनका इतना उलहना भी नागवार होगया। मैं एक तरह से तिलमिला उठा। तुरन्त गणेशजी के पास कानपुर पहुचा।

'अब पण्डितजी के पास रहने मे लुत्फ नही, धर्म भी नही। अब तक उन्होने मुझसे तीखे स्वर तक मे बात नही की। आज एक ऐसी बात के लिए मुझसे जवाब तलब किया, जिसे मैं समझ तो सकता हूँ, पर निगल नही सकता। मैं इसी महीने मे यहासे काम छोड़कर इन्दौर चला जाऊ गा।'

'जब पण्डितजी का इतना प्रेम व भरोसा आप पर है, इतने तेज़ मिजाज होते हुए भी आपको आज तक कभी रोका-टोका नही, अलिफ से बे नहीं कहा, तो इतनी-सी बात पर इतना बड़ा निश्चय करना ठीक नही। आप चले जावेगे तो मेरी यह भविष्यवाणी है कि पण्डितजी एक साल से ज्यादा 'सरस्वती' मे नही रहेगे। आपका उन्हे बड़ा सहारा है।'

'मैं भी उन्हे पिता व गुरु दोनो की तरह मानता हूँ। पर यह गोली निगलना मेरे लिए मुश्किल है। मैं जहा रहता हूँ, घर समझ कर काम करता हू। किसीकी डाट-फटकार आजतक सही नही। सम्मेलन वालो से लाग-डाट होने के कारण वे मुझे अपने घर के अधिवेशन मे भी नही जाने देना चाहते थे—यह कैसे बरदाश्त किया जा सकता है?'

गणेशजी ने तरह-तरह से मुझे समझाया। मेरे भावी-हित की, पण्डितजी की असुविधाओं की दलीलें दीं—पर मेरा जी जो उचट गया सो उचट ही गया। एक महीने के अन्दर ही मैं इस्तीफ़ा देकर इंदौर चलागया।

लन्दन टावर—रानी जेनीका शिरश्छेद

को देखते और टिप्पनी करते जा रहे थे। गाँवोंमें वहाँ भी महल नहीं खड़े हैं; तो भी सभी मकान पक्के, दोमहले, दोतल्ले और साफ होते हैं। जोताई करने, घासके ढेरको रखने आदिकी सभी बातोंमें एक नियम दिखाई पड़ता था। थोड़ी देरमें बायीं ओर, आगेकी तरफ, एक गिरजाका विशाल शिखर दिखाई पड़ा। साथियोंने कहा—"आ पहुँचे केम्ब्रिजमें!" स्टेशन अच्छा साफ-सुथरा था। मि० ब्लोफेल्ड और श्रीसेन नायक, लेनेके लिये, स्टेशनपर पहुँचे हुए थे। १२ बज रहे थे, इसलिये पहले तो झटपट जाकर पेटपूजा करनी थी, जिसमें कहीं तमादी न लग जाय!

हम लोगोंके खानेका नियम मालूम था; इसलिये भोजन तैयार था। हाँ, इतनी गलती जरूर थी कि, वहाँ श्वेत शालग्राम (अण्डे) की कढ़ी भी थी। उन्हे क्या मालूम था कि, भदन्त आनन्द ऐसे परम सात्विक भोजनसे भी परहेज करते हैं! खैर। वहाँ फल, दूध, मक्खन, रोटी सब काफी परिमाणमे मौजूद था। हमलोगोने अच्छी तरह भोजन किया।

भोजन समाप्त होतेही फोनपर टेक्सी लानेके लिये कह दिया गया; और हम लोगोको सीढ़ीसे उतरते-उतरते वह दरवाजेपर आ लगी। अब हमे विश्वविद्यालय देखना था। मि० ब्लोफल्ड हमारे प्रदर्शक थे। ये बड़े ही उत्साही बौद्ध नवयुवक हैं। इनकी नानी साइबेरियाकी एक मङ्गोल बौद्ध महिला थीं, जिन्होंने किसी रूसी सज्जनसे ब्याह किया था। उनकी लड़की या हमारे मित्रकी

माँने एक अँग्रेज सज्जनसे ब्याह किया था। इस प्रकार मि० ब्लोफेल्ड अपनेको नवागत बौद्ध न मानकर जन्मसिद्ध बौद्ध होनेका अभिमान रखते हैं। उनकी विश्वविद्यालयकी पढ़ाई समाप्त होनेको है। पूर्वमें आकर, बौद्ध आदर्शके अनुसार, सेवा करनेका इरादा रखते हैं।

थोड़ी देरमें टेक्सीने हमें क्वीन्स कालेजके सामने ले जाकर खड़ा किया। केम्ब्रिजको कोई छोटी जगह मत समझिये। उसके दर्जनों कालेजों और छ-सात हजार विद्यार्थी ही एक छोटा शहर बना देते हैं। उसपर उनके कामकी चीजोंको मुहय्या करने तथा सेवा करनेके लिये भी तो और काफी आदमियोंकी जरूरत होती है? केम्ब्रिज-आक्सफोर्डमे यही नहीं कि वहाँ बहुमूल्य विद्याका भण्डार प्रचुर परिमाणमे वितरणके लिये तैयार है और उसके सुन्दर मकानोकी पङ्क्तियाँ एवम् हरी घासोके क्रीडाक्षेत्र तथा प्रमोदक्षेत्र बड़े ही चित्ताकर्षक है; बल्कि यह उतने ही पुराने हैं, जितने कि, अँग्रेज जातिकी सभ्यता। यहाँ के कतिपय कालेजोकी स्थापनाके समयको यहाँ देता हूँ, जिससे पाठक इसे अच्छी तरह समझ सकते हैं—

पीटर हाउस कालेज	ई० सन् १२८४
क्लेर कालेज	१३२६
कोर्पस क्रिस्टी कालेज	१३३२
पेम्-ब्रोक्कालेज	१३४६

केम्ब्रिज—बेनेडिक्टका गिर्जा
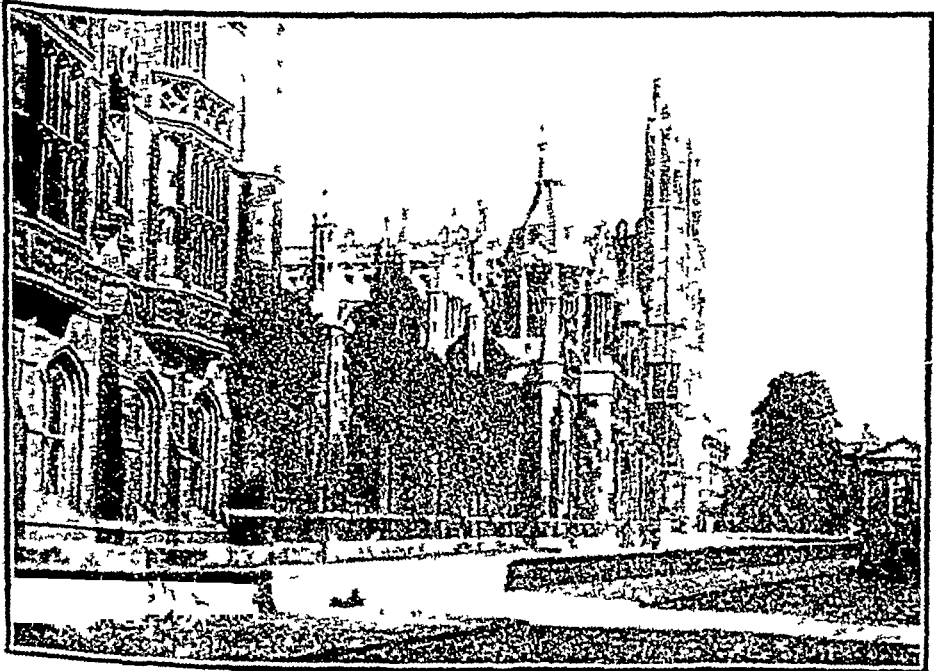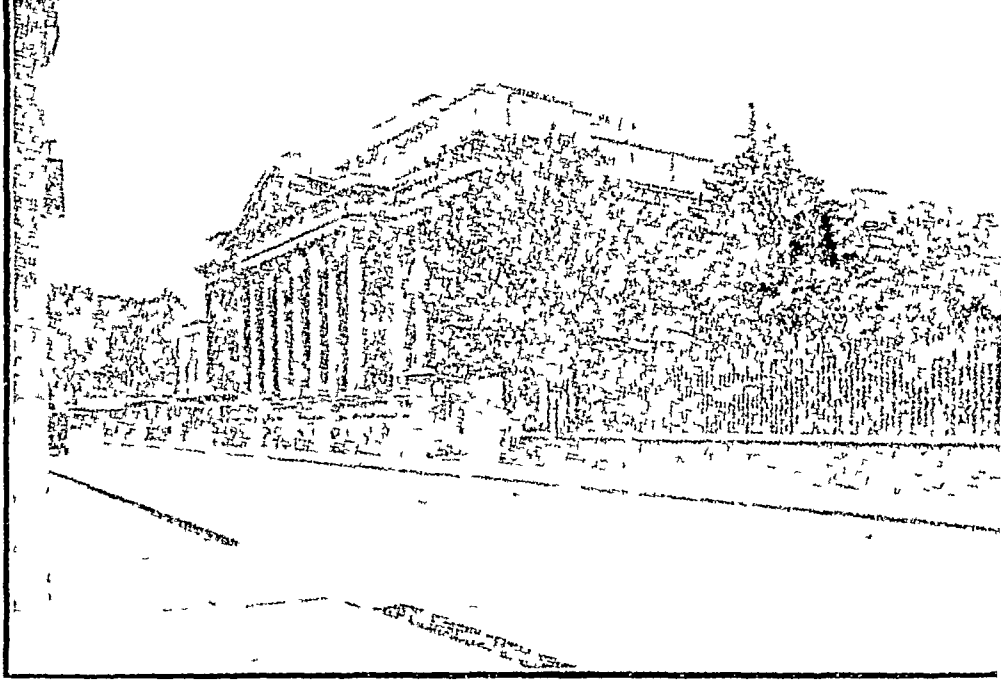
केम्ब्रिज—फिट्ज् विलियम् सग्रहालय
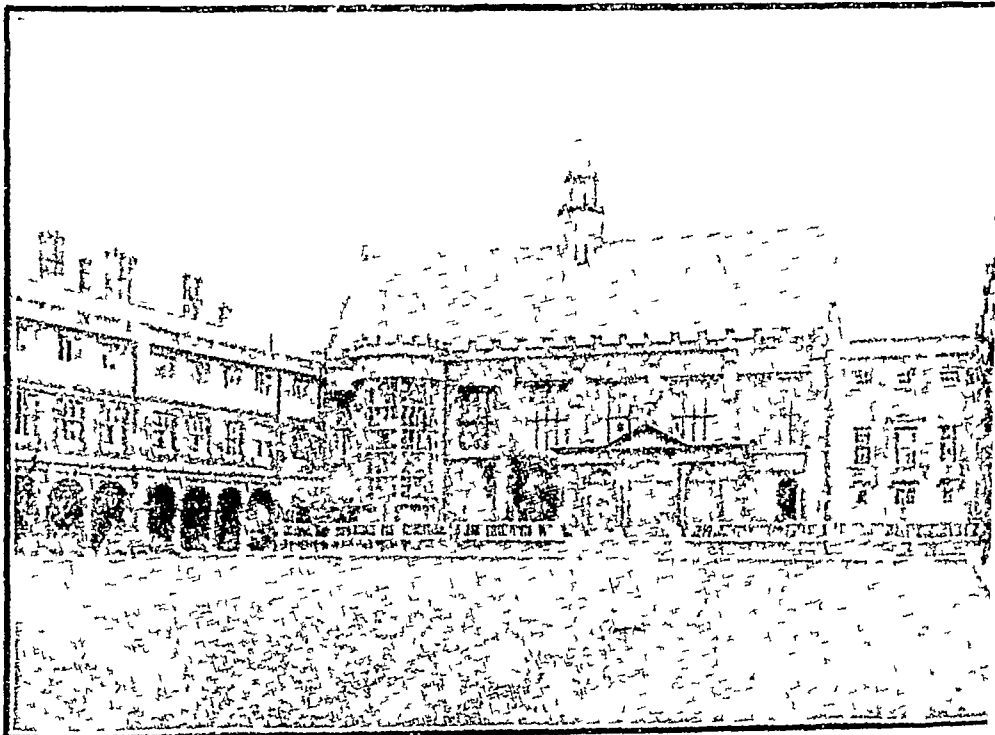
केम्ब्रिज—ट्रिनिटी कालेज

कैस कालेज	१३४८
क्राइस्ट कालेज	१४४२
क्वीन्स कालेज	१४४७
सेंट कैथरिन् कालेज	१४७५
जीसस् कालेज	१४९७
सेंट जान्स कालेज	१५०९
मेग्डलिन कालेज	१५४२
ट्रिनिटी कालेज	१५४६
एम्मानुएल कालेज	१५८४
सिडनी-ससेक्स कालेज	१५८९
किंग्स कालेज	१७२४
डाउनिङ् कालेज	१८०७
गर्टन कालेज	१८४९
न्युह्म् कालेज	१८७५
सेल्विन् कालेज	१८८२

सबसे पुराना कालेज १२८४ मे स्थापित हुआ था। तबसे अबतक इस विश्वविद्यालयका अविच्छिन्न जीवित सम्बन्ध अंग्रेज जातिसे है। सात सौ वर्षोंका यह घनिष्ट सम्बन्ध, किसी भी जाति के लिये, "यत्परं नास्ति" प्रेम और अभिमानका कारण हो सकता है। उदाहरणार्थ आप नालन्दा और विक्रमशिलाको ले लीजिये। नालन्दा पाँचवीं शताब्दीमें, महाविद्यापीठके रूपमें, स्थापित हो चुकी थी वैसे तो, विहार या मठके रूपमें, यह बुद्धके समय

(ईसा पूर्व पाँचवीं छठीं शताब्दी) ही से था; और, विक्रमशिला की भी स्थापना, एक विद्यापीठके रूपमें, आठवीं शताब्दीमें हुई थी। यह दोनों ही विश्वविद्यालय ११९८—११९९ ई० में नष्ट किये गये थे। उस समय नालन्दाके साथ सात सौ वर्षोंसे अधिक का और विक्रमशिलाके साथ चार सौ वर्षोंका इतिहास सम्बद्ध था। वह जीवित सम्बद्ध पिछले सात वर्षोंसे टूट गया है, और, हमारी जाति उन स्थानों तकको भूल गयी थी। किन्तु अब उनके प्रति हमारा प्रेम और आदर-भाव कितना बढ़ता जा रहा है? आक्सफोर्ड-केम्ब्रिजके विद्यार्थी यह सोचकर कितने प्रभावित होंगे कि, जिन कोठरियोंमें वह रह रहे हैं, जिन मेजों पर वह खाना खा रहे है जिन आँगनो (Courts) में टहल रहे है, उनमे न्यूटन, मेकाले, मिल्टन, स्पेंसर और पिट जैसे राजनीतिक, उन्हींकी तरह रहते, खाते, टहलते पढ़ रहे थे!

केम्-ब्रिज (केमका पुल) नाम केम् नदीके पुलके कारण हुआ है। यह भी कहते है कि, ग्रेटा-ब्रिज (ग्रेटा नदीके पुल) से केटा-ब्रिज होकर केम्ब्रिज, १६०० ई० के करीब, बना है। ग्रेंटा नदी अब भी, उसी नामसे, पुकारी जाती है।

भारतकी तरह यूरोप में भी विद्यापीठों का आरम्भ भिक्षुओंके मठोंसे हुआ। यद्यपि उनमें अब वह मठ नहीं हैं; (माफ कीजिये, संस्कृतमे मठ शब्द, छात्रावासके लिये भी प्रयुक्त होता है) तो भी उनमे बहुतसी पुरानी बाते मौजूद है। वहाँके हर एक विद्यार्थीको एक खास प्रकारका काला गौन उसी प्रकार पहनना अनिवार्य है,

जैसेकि, तिब्बतके डेपूङ् और सेराके महाविहारोंमें—जिनमें क्रमशः आठ और छ हजार विद्यार्थी रहते और पढ़ते हैं—एक प्रकारके पीले गौनको (जोकि, कन्धेकी चुनावट आदिमें उनसे मिलता है) और एक प्रकारकी विचित्र टोपीको अवश्य पहनना पड़ता है। केम्ब्रिज-आक्सफोर्डके कालेज, विषयके अनुसार, साइंस कालेज, आर्टस कालेजके तौरपर, विभक्त नहीं है; बल्कि ठीक वैसे ही, जैसे डेपुङ् और सेराके खम्-सङ् और ङ-सङ् (कालेज) विषयसे विशेष सम्बन्ध नहीं रखते। स्मरण रहे, तिब्बतके यह महाविहार यद्यपि १४१५ और १४१८ ई० मे स्थापित हुए; तो भी वह अपने से पूर्वके सम्-ये आदि विहारोंके नमूनेपर बने थे, जो स्वयं नालन्दा और विक्रमशिलाकी नकल थे।

अब आइये, कुछ कालेजोंकी सैर कीजिये। यह कालेज दर-असल दोमहले (कहीं-कहीं तिमहले भी) मकानोंसे घिरे एक चौड़े आँगन हैं। किन्हीं-किन्हीं कालेजोंमें आँगनोंकी संख्या तीन-चार भी है। इन मकानोंमे विद्यार्थियोंके रहनेकी छोटी-छोटी कोठरियाँ और भोजनशालाएँ भी है। व्याख्यानशालाएँ प्रायः अलग है। मकान जितने ही पुराने हैं, उतने ही उनके दरवाजे छोटे और कोठरियाँ तङ्ग। पुराने भवन अधिकांशतः ईंटोंके बने हैं।

आइये, पार्कर्स पीससे शुरू करें। यह हरी घासोंका मखमली फर्शवाला विशाल क्रीडाक्षेत्र है। प्रायः हर समय यहाँ खेलनेवाले मिल जायँगे; विशेषतः आजकल, जब कि, किताबका कीड़ा होना

अपमानकी बात समझी जाती है। यहाँसे आगे बढ़िये और बायीं तरफ दो-तीन टेढ़ी-मेढ़ी गलियों जैसी सड़कोंको पारकर अब आप कोर्पस क्रिस्टी कालेज के द्वारपर पहुँच गये। देखिये, कैसा किलानुमा द्वार है। भीतर घुसिये, पगडण्डियोंके साथ हरी घास बिछा आँगन है। मकानकी कुर्सीके नीचेपन तथा छोटे दरवाजोंसे (नाक-भौं न सिकोड़िये) यह १३५२ ई० में स्थापित हुआ था। अँग्रेज चाहते तो, इसकी जगह एक विशाल अप्-टू-डेट पत्थरका महल खड़ा कर देते; किन्तु वह ६०० वर्षोंके इतिहासको कैसे बतला सकता था। इसे कोर्पसक्रिस्टी और भगवती कुमारी मरियम नामक दो शिल्पकारसंघोंने बनवाया था। पुरानी इमारतको बनाये रखनेपर ही तो कह सकते हैं—"This College is unique among the Colleges in respect of its Democratic origin" (इसका आरम्भ जनसत्ताके होनेसे यह कालेज और कालेजोंमें अद्वितीय है)। जनसत्ताके भावोंको जागृत करनेके लिये यह कितनी सजीव शिक्षा देता है। हमारी साँचीमें भी पूर्व द्वारका तोरण, विदिशाके हाथी-दाँतके शिल्पियोंके संघ द्वारा ई० पू० दूसरी सदीमें बनवाया गया था, जो कला-सौन्दर्यमें, संसारमे, अपने ढंगका अद्वितीय है। हमारे बालकोंको प्रजासत्ताक भाव अब जागृत करनेमें उससे कितनी शिक्षा मिलती, यदि वह उसके नीचे बसते ? क्षमा कीजिये, मैं लिखते वक्त विषयसे बहका नहीं जा रहा हूँ; बल्कि देखते वक्त भी मेरे चित्तकी वही दशा थी। वस्तुतः तुलना करके देखनेपर ही मुझे उनका महत्व अधिक

मालूम हुआ। मुझे तो खयाल आता था, क्या नालन्दा विहारियो-का आक्सफोर्ड-केम्ब्रिज नहीं बन सकता? वह भी राजधानी पटनासे उतनी ही दूर है, जितनी कि, लन्दनसे उक्त विद्यालय! उसके पीछे भी ७-८ शताब्दियोंका भव्य इतिहास है। यदि इन्हें मिल्टन और स्पेसर जैसे कवि, न्यूटन और डार्विन जैसे वैज्ञानिक तथा दार्शनिक पैदा करनेका अभिमान है, तो नालन्दाको भी दिङ्-नाग, चन्द्रकीर्ति, धर्मकीर्ति और शान्तरक्षित जैसे अद्भुत दार्शनिक, चन्द्रगोमी जैसे महावैयाकरण, सरहपाद, भूसुक जैसे हिन्दीके कवि पैदा करनेका सौभाग्य प्राप्त है। यदि आज दुनियाके कोने-कोनेसे इन विश्वविद्यालयोमे विद्यार्थी आते है, तो किसी समय नालान्दामे भी इरान, मध्य एशिया, चीन और कोरिया, चम्पा और कम्बोज, जावा और सुमात्रा, वर्मा और सीलोनके विद्यार्थी पढ़ने आते थे। यदि केम्ब्रिज और आक्सफोर्ड अपने तीन सौ वर्ष पुराने मेजो, चार सौ वर्ष पुराने चूल्हो, सात सौ वर्ष पुरानी दीवारों और दरवाजोको दिखलाकर, उस समयका जीवन्त चित्र, हमारे सामने, रख सकते है, तो नालन्दा भी छठी सदीकी दीवारों और द्वारो, आठवीं सदीके कूओ, सातवीं और नवी सदी-के ताम्रपत्रो, हजार वर्ष पुराने चूल्हो, नाना मूर्तियो और स्तूपों तथा पुराने आचार्योंमेंसे किन्हीं-किन्हींकी हड्डियोतकको हमारे सम्मुख रखकर हमारे इतिहासको क्या सजीव नही दिखा सकता? दर-असल उन विश्वविद्यालयोको देखते समय क्षण-क्षणमे मेरा मन, शरीरको इंगलैडमें छोड़कर, नालन्दामे पहुँच जाता था!

उनकी दीवारोंकी सुरक्षित अवस्थाको देखकर मन कहता था—नालन्दाकी भी दस-बारह हाथ ऊँची दीवारोंकी तथा और सभी नीचेकी चीजोंकी भी रक्षा की जा सकती है। यदि युक्तप्रान्तमें बनारस, प्रयाग, लखनऊ, अलीगढ़ और आगरामें पाँच विश्व-विद्यालय हो सकते है, तो विहार क्या दो नहीं रख सकता? नालन्दामें परीक्षकोंका नहीं, शिक्षक-विश्वविद्यालय बन सकता है। उन्हीं पुराने मकानोंपर फौलादी ढाँचों (steel frame) वाली दीवारे उठाई जा सकती हैं। इस प्रकार निचली पुरानी कोठरियाँ भी काम आ सकती हैं। और ऊपर दूसरी ओर नयी बन सकती है। आज जो पुरातत्व-विभागको उन ठंडी दीवारोंकी, इतना रुपया खर्च करनेपर भी, रक्षा करनेमे सफलता नही मिल रही है, वह भी उससे आसानीसे हो सकती है। नालन्दा भिक्षुओंका तथा एक विशेष धर्मका विश्वविद्यालय था, यह कोई आपत्ति नहीं। आक्सफोर्ड-केम्ब्रिज भी तो एक समय ईसाई भिक्षुओं और भिक्षुणियोंके ही मठ थे? वहाँ तो उन्हें जबर्दस्ती हटना पड़ा, यहाँ तो वह स्वयं हट गये हैं! आज न हो, कभी भी विहारियोंको. नालन्दाके शवमें, प्राण-प्रतिष्ठा करनी ही होगी! यह काम बीस-पचीस लाख रुपयोंके लिये नहीं रुका रह सकता।

अच्छा, यह तो "प्रथमे ग्रासे मक्षिकापातः" हुआ। कालेजमें घुसते ही आपका इतना समय मैंने ले लिया। अब थोड़ेमें कुछ और संस्थाओं के बारेमे कहकर अपनी लेखनी और आपके चित्तको विश्राम देता हूँ। उक्त कोर्पस् क्रिस्टी कालेजमे द्वारसे घुसने-

केम्ब्रिज—पीटर्स हाउस् कालेज
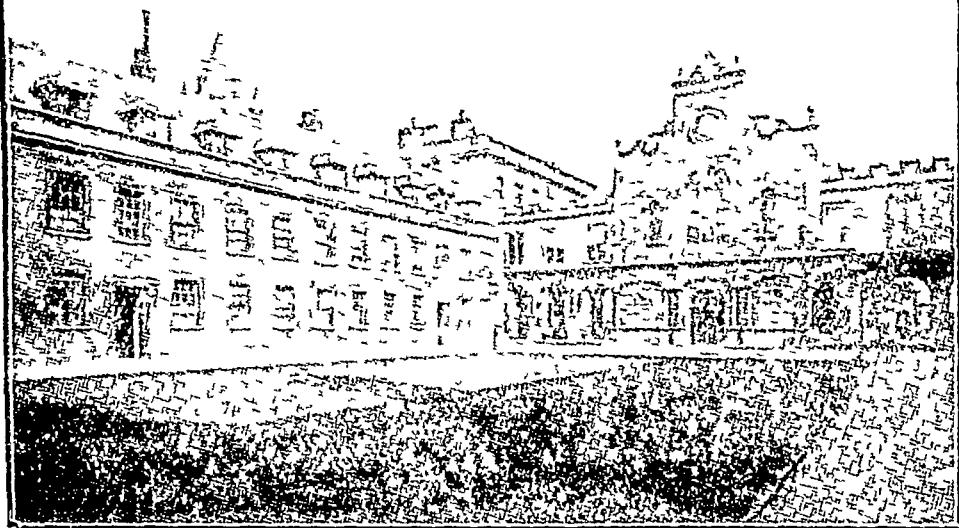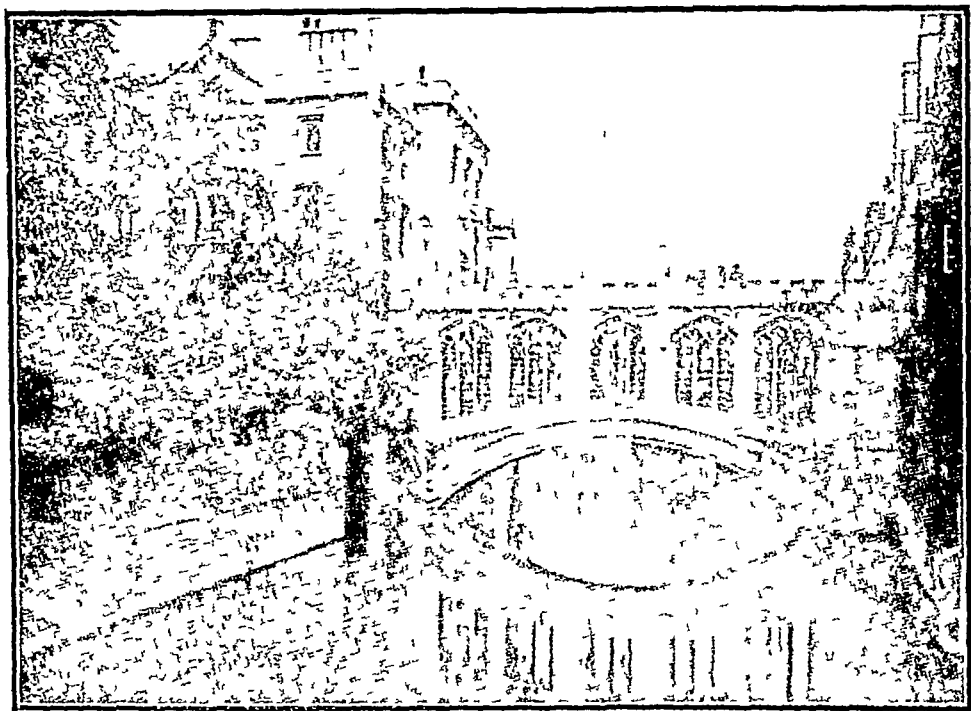
केम्ब्रिज आहोका पुल
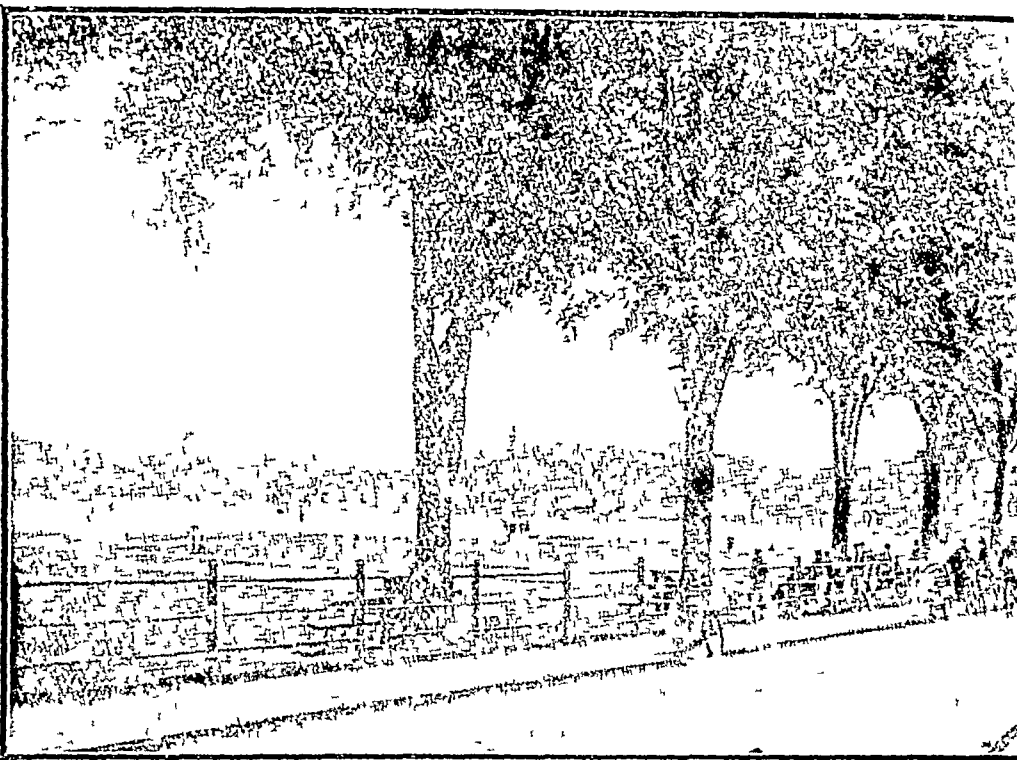
केम्ब्रिज—पार्कर्स पीस
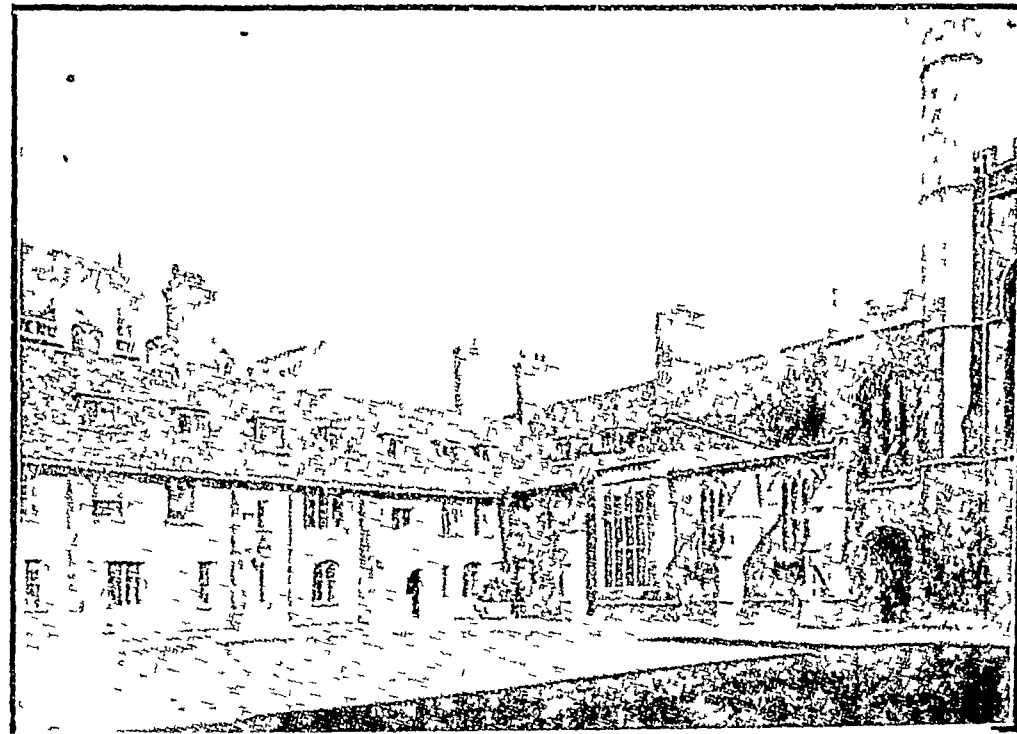
केम्ब्रिज—कोर्पस् क्रिस्टी कालेज

पर बायीं ओर, उत्तरकी तरफ, शाला (जर्मन और फ्रेंच Salle, अँग्रेजी Hall मे 'स' का 'ह') है। तीन ओर विद्यार्थियोंकी कोठरियाँ है। दक्खिन तरफ (पश्चिमसे पूर्व) रसोईघर, शाला, साधारण गृह (जिसके ऊपर स्थविर (=वृद्ध, Master) का निवास-गृह है) तथा पुस्तकालय है। आजकलके जमानेमें यदि किसी भूले-भटकेको खुदामियाँकी खुशामद करनी होती है, तो वह पड़ोसके सन्त बेनेडिक्टके गिरजेमें चला जाता है, जिसका शिखर केम्ब्रिजकी सबसे पुरातन इमारत है। शाला भोजनागारका काम देती है, जिसमे मेजोंके पास कुछ निचले पीठ, विद्यार्थियोंके लिये, हैं और एक ओर मेजोंके पास ऊँची कुर्सियाँ, अध्यापकोंके लिये, हैं। कालेजके हर एक विद्यार्थीको, कुछ नियमित दिनोंमे, यहाँ भोजन करना जरूरी है। सारी दुनियामे जात-पाँतका स्वप्न देखने-वाले अभागे हिन्दुओंको मालूम होना चाहिये कि, जब वेल्सके राजकुमार (युवराज) आक्सफोर्डके मेड्लिन कालेजके विद्यार्थी थे, तब उन्हीं बेंचोंपर अपने कालेजके साधारण मोचीका लड़का भी उनके साथ खाना खा सकता था। सीढ़ीकी दाहिनी ओर निचले तलकी कोठरीको जरा ध्यानसे देखिये। इसीमे शेक्सपियर-के समकालीनोंमे अत्यन्त प्रतिभाशाली कवि और नाट्यकार क्रिस्टोफर मार्लो (मृत्यु १५९३) कभी रहा करता था, जिसकी स्मृतिमे दीवारपर पट्टी लगा दी गयी है। सर फ्रान्सिस् ड्रेक और सर निकोलस बैकन् इसी कालेजके विद्यार्थी थे।

सड़क पकड़कर जरा और दक्खिन चलिये। यह पीटर्स

हाउस कालेज है। यह १२८४ ई० में स्थापित किया गया था अर्थात् विक्रमशिलाविहार (यही सुलतानगंज, जहाँसे "गंगा" निकलती है) के ध्वस्त किये जाने (११९९ ई० के ठीक ८५ वर्ष बाद। यह केम्ब्रिजका सबसे पुराना कालेज है। हर एक कालेजकी बनावटमें कुछ भेद है; और, कुछ भाग पीछेसे घटाये-बढ़ाये गये हैं; तो भी विद्यार्थियोंके छोटे-छोटे कमरे (बहुत पीछे बने कालेजोंको छोड़कर) आदि वैसे ही हैं।

इसी सड़कसे जरा और दक्खिन, फिट्ज् विलियम् संग्रहालयकी (Museum) भव्य इमारत देखिये। १८१६ ई० में वाइकाउंट फिट्ज़ विलियमने अपने चित्रों, हस्तलिखित ग्रन्थों और पुस्तकादि-के अनमोल संग्रहको १ लाख गिन्नी (आजकलके हिसाबसे प्रायः २० लाख रुपये) के साथ विश्वविद्यालयको अर्पण किया। उसीसे यह संग्रहालय बना है। मालूम हुआ, त्याग हमारे ही बाप-दादों-की सम्पत्ति नहीं है। यदि अंग्रेज जातिमे यह गुण न होता, तो सिर्फ धोखे-धड़ीके भरोसे वह इतनी बड़ी न बनती। इनमें इटालियन, डच, फ्लेमिश, इंगलिश, सभी कलमोंके चित्र शामिल हैं। हेरिसने अपने चित्र-संग्रहको दस हजार गिन्नियोंके साथ तथा डाक्टर ग्लेशरने अपने चीनी बर्तनोंको दस हजार गिन्नियोंके साथ प्रदान किया था। इनके अतिरिक्त और भी बहुत प्रकारके अनुपम चित्र और बहुमूल्य हस्तलेख, इस संग्रहालयमे, संगृहीत हैं।

आइये, अब हम फिर उसी सड़कसे उत्तरकी ओर कोर्पस

क्रिस्टी होते लौटें। जिसमे लम्बी-ऊँची छतोंवाला गिरजा है, वही किग्स् कालेज है। छठे हेनरी बादशाहने, १४४६ ई०मे, इसकी आधार-शिला रखी थी, किन्तु बहुत काल बाद, कितने ही राजाओंके कालमे होकर, १५१५ ई०मे यह बनकर तैयार हुआ। यद्यपि वह समय गृह-कलहका था, तो भी इसका काम धीरे-धीरे बराबर होता रहा। इंगलैंडमे लम्बाकार इमारतोंका यह सर्वोत्कृष्ट नमूना है। यह कालेज ईटन स्कूलसे घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। दोनोंके लाञ्छन एकसे है। बादशाहने बहुतसे विशेषाधिकार दे रखे थे, जिन्हें १८५१ ई० मे कालेजने छोड़ दिया। तो भी सीनेट हाउसमे इसीके ग्रेजुएट सर्वप्रथम प्रविष्ट किये जाते है। यूनिवर्सिटीके प्रोक्टरको, अपने अधिकारसे, इसके फाटकके भीतर घुसनेका अधिकार नहीं है।

सीनेट हाउस और यूनिवर्सिटीकी लाइब्रेरी भी दर्शनीय हैं। आक्सफोर्डके बोड्लियन पुस्तकालय तथा लंदनके ब्रिटिश म्युजियमकी भाँति इस लाइब्रेरीको भी ग्रेट ब्रिटेनमे प्रकाशित प्रत्येक पुस्तककी एक कापी पानेका अधिकार है।

१५४६ ई०मे आठवे हेनरीने ट्रिनिटी कालेजकी स्थापना की थी। इसमे किग्स हाल भी मिला हुआ है, जिसे तृतीय एडवर्डने, १३३६ ई०मे, बनवाया था। इसके महाप्राङ्गणकी इस सीढ़ीपर नजर डालिये। इसी सीढ़ीपरकी उपरली कोठरियोमे न्यूटन, मेकाले और थैक्रेने निवास किया था। इसका इतना बड़ा हाल है, तो भी विद्यार्थियोकी संख्या इतनी अधिक है कि, उन्हे बारी-

बारीसे, तीन बारमें, भोजन करना पड़ता है। लाइब्रेरीकी तरफ, दाहिने तल्लेमें आपको वह जँगले मिलेंगे, जिनसे महाकवि बैरन कभी झाँका करते थे।

जिस जगह सेंट जान्स कालेज है, वहीं ११३५ ई० मे, सेंट जान्स अस्पताल स्थापित हुआ था। पीछे यह उपेक्षित होकर छोड़ दिया गया था। १५०९ ई०में राजा हेनरी पाँचवेंकी माँने इसे पुनः स्थापित किया। महाकवि वर्डस्वर्थ इसीके विद्यार्थी थे।

'केम्ब्रिज यूनियन सोसाइटी' केम्ब्रिजके विद्यार्थियोंकी बड़ी सभा है, जहाँ वह हर तरहका वाद-विवाद किया करते हैं। यहीं इंगलैंडके कितने ही भावी मन्त्री तैयार किये जाते है।

संग्रहालयोंको देखना हो, तो डानिङ् स्ट्रीटमे चलिये। यहाँ आमने-सामने दो इमारतोकी कतारे हैं। एक ओर आयुर्वेदका संग्रहालय है, दूसरी ओर रसायनका। इनके पीछे प्राणि-विद्या और खनिज-विद्याके संग्रहालय हैं। भूगर्भशास्त्र, पुरातत्त्व और मानवतत्त्वके संग्रहालय भी यहीं, पासमें ही, हैं।

वैज्ञानिक प्रयोगशालाओंके लिये केम्ब्रिज संसार भरमे प्रसिद्ध है। विज्ञानमें इसकी वैसी ही ख्याति है, जैसी कि, आक्सफोर्डकी साहित्यमे। केम्ब्रिजका पूरा वर्णन न इस छोटे लेखमें आ सकता है, न एक दिनमे सबको देखा जा सकता है।

व्याख्यान और रेल, दोनोंके लिये, देर हो रही थी। आकर व्याख्यान दिया, और, शामकी रेल पकड़कर रातको फिर लंदन पहुँच गये।

५

लंदनमें (क)

मैं अपने एक लेखमें २७ जुलाई १९३२ को लंदन पहुँचनेकी बात लिख चुका हूँ। ग्लासेस्टर रोडमें ४१ वें नम्बरका मकान, महाबोधिसभाका मकान है। यह स्थान लंदनके प्रसिद्ध नगरोद्यान रिजेंट्स पार्कके बिलकुल पासमे है। जितने रुपयेमें यह मकान खरीदा गया, जल्दी न की गयी होती, तो उतनेमे ही और अच्छा मकान मिल सकता था। मकानमे तीन मंजिले ऊपर है और एक तल्ला जमीनके नीचे। पीछे एक छोटा-सा बाग है, जिसमे चिनार और दूसरे वृक्ष है। हम लोगोका डेरा दूसरे तलके एक बड़े कमरेमे लगा। इस कमरेमे गैसकी एक अँगीठी भी थी जो जाड़ेमें हमारे बड़े काम आयी। बिजलीकी रोशनी और हवा आदिका सुन्दर प्रबन्ध था। इसमे दो चारपाइयोंके अतिरिक्त एक मेज, तीन-चार कुर्सियाँ और दो सामान रखनेके दराज भी थे। इसी तलकी एक कोठरीमें स्नानागार था और दूसरीमे पायखाना।

सारा प्रबन्ध देखकर मुझे पूरा संतोष हो गया। हमारे पाचक विलियम महाशय लङ्कावासी हैं, किन्तु १०-१२ वर्षोंसे लंदनमे ही रह गये हैं। व्याह भी कर लिया है और दो-तीन बच्चे भी हैं। यह देखकर अफसोस होता था कि, उन्हे सप्ताहमें एक बार घर जानेको मिलता था। यह मुहल्ला मध्यवित्तके लोगोंका था, इसलिए मकानोंका किराया ज्यादा है। भला ऐसे मुहल्लेमें वे परिवारके सहित कैसे रह सकते थे? उनके साथ बर्तन धोने आदिका काम करनेवाली नौकरानी अँग्रेज थी। सवेरे वह हमारे लिए दूध, डबल रोटीके अतिरिक्त थोड़ा फल और विलायती मिठाई दे दिया करते थे। साढ़े ग्यारह बजे कभी छठे-छमाहे अर्थात् बहुत दिनों बाद, इच्छा हुई, तो कुछ चावल भी दे दिया, नहीं तो उबाली सब्जियाँ, पनीर, मक्खन, टोस्ट की हुई रोटी और फल आदि दे दिया करते थे। खानेके बारेमें तो हम निश्चिन्त थे। विलियम अच्छे पाचक पहले भी थे और विलायतमे जाकर तो उन्होने इस विषयके विद्यालयमे कुछ शिक्षा भी ग्रहण की थी।

दो पहरको "इवनिंग स्टैंडर्ड" और "इवनिंग न्यूज" नामक दो दैनिक पत्रोंके संवाददाता आये। मुझसे जो पूछा, मैंने उत्तर दे दिया। इनमे एक संवाददात्री थीं। उन्होने अपने ही कहा कि, "मेरा पिता मोतीहारीमे रहता है। मै वहाँ बहुत रही हूँ"। विलायती पत्रोंके विषयमे अपना अनुभव आगे लिखूँगा।

मकानमें हम लोगोंके अतिरिक्त पाँच विद्यार्थी भी रहते थे। इनमें एक पी-एच० डी० के और दूसरे डाक्टरीके विद्यार्थी थे।

सभी बौद्ध और लङ्काके निवासी थे। यह बात मुझे खटकती जरूर थी। धर्म-प्रचारकोंको जिस देशमे जाना है, वहॉके लोगोमे रहना अच्छा होता है। हॉ, हमारे पास जो रिजेंट्स पार्क था, उसमे जन्तु-संग्रहालय भी था। रातमे सोते हुए जब मैंने सिंह-की गर्जना सुनी, तब पहले मुझे भ्रम-सा मालूम हुआ, पर पीछे पता लगा, यही जन्तु-संग्रहालय है।

लन्दनकी ऋतु आदिके बारेमे इतना ही कहना है कि, वह असूर्यम्पश्य देश है। जब कभी सूर्यके दर्शन हो जाते है, तब लोग "कैसा सुन्दर दिन है" की रटन लगाने लगते है; और, आधे पागलकी भॉति कामसे फारिग होते ही नदी, समुद्र या बागीचे-की ओर दौड़ने लगते है।

३१ जुलाईको हमारे स्वागतमे सभा हुई। जैसा रिवाज है वैसा दोनो ओरसे भाषण हुए। उसी दिन मैने देखा कि, जिस कमरेमे हम लोगोका साप्ताहिक अधिवेशन होता है, उसमे अस्सी नब्बे कुर्सियोसे अधिक नहीं आ सकतीं। बहुतसे लोगोंको इस कारण बाहर खड़ा होना होता है। पाससें उतना ही बड़ा एक और कमरा था। हमने ट्रस्टियोको लिखा कि, दोनो कमरोका एक हाल बना दिया जाय। फलतः २५ सितंबरको हमारा अधिवेशन नये हालमे हुआ। मेरी दिनचर्या इस प्रकार थी—रातको बारह बजेसे पहले तो कभी सोता नहीं। आमतौर से दो और तीन बजे-के बीचमे सोता था, चार बजे भी सोना मामूली बात थी। कारण यह कि, हमारा स्थान यद्यपि केन्द्रसे कुछ हटकर था, तथापि

वहाँ बड़ी-बड़ी मोटरबसों और मोटरोंका हल्ला था। हमसे पचास ही गजके फासलेपर रेलवे लाइन थी, जिसपर गाड़ियाँ अक्सर दौड़ा करती थीं। उस वक्त तो मालूम होता था, जैसे सारे मकानोंको जुड़ी आ गयी है। बारह बजे रातके बाद यह हल्ला कम हो जाता था। उस वक्त मैं अपनी चारपाईपर लेटकर या कुर्सीपर बैठकर लिखनेका काम करता था। साढ़े छ बजे उठ जाता था। फिर मुँह-हाथ धोकर जलपान। तबतक दो-तीन दैनिक पत्र आकर पड़े रहते थे। घंटा पौन घंटा उनमे लगता था। यह मैं अपने लिये कह रहा हूँ। भदन्त आनंद समाचार-पत्रोंके उतने प्रेमी नहीं हैं। इसके लिये मैं उन्हें बधाई देता हूँ। लन्दन ही नही और जगहोंपर भी रातको जागकर काम करनेमे मेरा मन खूब लगता है। हाँ, अखबार हमारे पास कौन-कौन आते थे? अनुदार-दलका "टाइम्स" और मजदूर-दलका "डेली हेरल्ड"। ये तो निरन्तर आते थे। इनके अतिरिक्त उदार-दलका "स्टार" और स्वतन्त्र मजदूर-दलका साप्ताहिक "न्यू स्टेट्समैन" तथा साम्यवादी "डेली वर्कर" भी मैं पढ़ा करता था। वस्तुतः पश्चिमके देशोंके अखबारोंमें पार्टीबाजी इतनी जबर्दस्त है कि, जबतक आप सबके मतोंको न पढ़ें, सत्यतक पहुँचना असम्भव है। विलायती अखबार जितना "झूठहि लेना झूठहि देना, झूठहि भोजन झूठ चबेना" की नीतिको वर्तते हैं, उसका शतांश भी हमारे अखबारोने अभी नहीं सीखा— (कौंसिलके चुनावके वक्तकी बातोंको लेकर भी)। हाँ, तो अखबार पढ़नेके बाद मैं सो जाता था। हर दूसरे दिन स्नान होता था। जिस
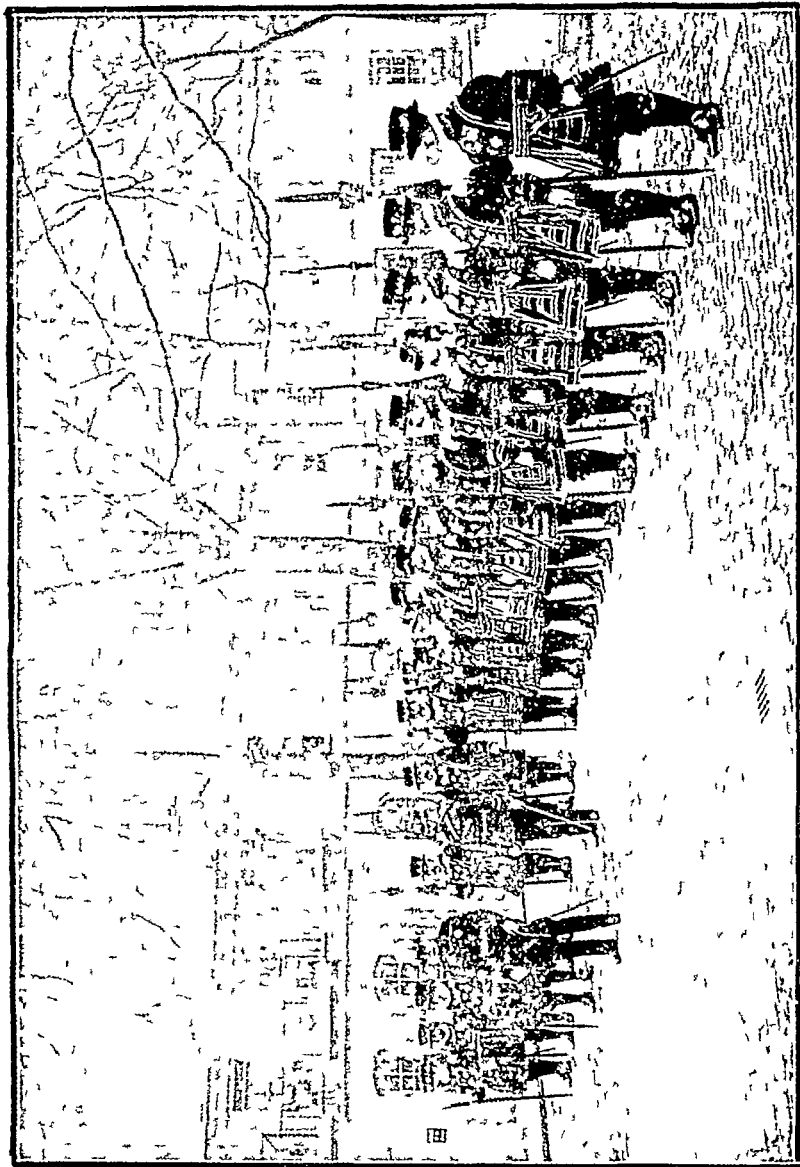
लंदन टावर—सिपाही

लन्दन—बौद्ध विहार

दिन बारी होती थी, ग्यारह बजे उठकर गुसलखानेमें चला जाता था और फिर ११॥ बजे खानेपर बैठ जाता था। इस सोनेके प्रोग्राम में कभी-कभी बाधा भी हो जाती थी, जब कोई मिलनेवाला आ जाता था। दोपहर बाद फिर पढ़ने-लिखनेका काम शुरू होता था या यदि कभी किसी दोस्तसे मिलने जाना होता या ब्रिटिश म्युजियममें पुस्तकावलोकन करना होता, तो उसका भी यही समय होता। हमारे लन्दन पहुँचनेके वक्त पौने नौ बजे तक बिना चिरागके हम पढ़ सकते थे, बशर्ते कि, कुहरा घना न हो। घने कुहरेमें दोपहरको भी बाज वक्त रोशनीकी जरूरत पड़ जाती थी। पीछे दिन छोटा होते-होते पाँच ही बजे अंधेरा होने लगता। शामके वक्त थोड़ा अपने घरके बागीचेमें ही टहलता था। इसके बाद फिर वही काम। रातको तो खाना था ही नहीं।

लन्दनमें भारतीय विद्यार्थियोंके रहनेके लिए कई छात्रावास हैं, जिनमें गावर स्ट्रीटमें ईसाई नौजवान सभाका (Y. M. C. A.) भारतीय छात्रावास भी है। ३ अगस्तको हम लोग इस छात्रावासको देखने गये। इसमें भारत और लङ्का, दोनोंके विद्यार्थी हैं। बिहार और युक्तप्रान्तके विद्यार्थी बहुत कम हैं। शायद जाते भी कम होंगे। उस दिन और प्रान्तोंके छात्र मिले; किन्तु बिहारके न मिल सके थे। दूसरी बार गया तो पण्डित शिवशङ्कर झा (M. L. C.) के पुत्र मिले, जो वहाँ आई० सी० एस० की तैयारीके लिये आये थे। लन्दन छोड़नेसे पूर्व यह भी पता लग गया कि, वह प्रवेशिका परीक्षामें पास हो गये। अन्तिम परीक्षा

पास हो जानेपर वह प्रथम मैथिल ब्राह्मण आई० सी० एस० होंगे। वहीं यह भी पता लगा कि, एक दूसरे झा भी पी-एच० डी० की तैयारी कर रहे हैं; और, उस समय जर्मनी गये हुए थे। मैं बड़ा ही प्रसन्न हुआ कि, जो मैथिल ब्राह्मण जाति पाँचवीं सदीके आरम्भसे लेकर आजतक (वच्चा झा और वालकृष्ण मिश्रके रूपमें) अद्भुत दार्शनिक पैदा करनेमें सारे भारतमें प्रथम रही है, वह इतने दिनोंतक संसारके रङ्गमञ्चपर आकर, अपने दिमागी जौहर दिखानेसे, सिर्फ अपने कूपमण्डूक विचारोंके कारण, वञ्चित रह गयी। अब उसमें भी कुछ ऐसे सपूत या कपूत तो पैदा होने लगे!

अखबारोंके इनटरव्यूकी बातें ला-लाकर मैं अपने और आपके समयको बार-बार ज़ाया न करूँगा। मेरे लन्दनके साढ़े तीन मासके निवासमें दर्जनों बार अखबारवाले आये। ५ अगस्तको "डेली मेल" का एक संवाददाता आया। "डेली हेरल्ड" के तो कई बार आये। इनके सम्बन्धमें एकाध मनोरञ्जक बात कहकर इस विषयको मैं खतम करना चाहता हूँ। श्रीतेलकर एक महाराष्ट्र सज्जन हैं, जो कितने ही वर्षोंसे लन्दनमें रहकर अखबारनबीसीका कार्य कर रहे हैं। उन्होंने मुझसे एक बार तिब्बत-यात्राके बारेमें पूछा। मैंने बतला दिया। इसके बाद उन्होंने इस विषयमें एक लेख लिखकर "डेली मेल" को दिया। "डेलीमेल" के आफिससे एक आदमी तसदीक करानेके लिये लेखको मेरे पास ले आया। उसमें लिखा था—"भिक्षु राहुल एक बार तिब्बतके

घोर जङ्गलमे जा रहे थे। उस समय लपलपाती तलवार लिए आठ डाकू आ गये और उन्होने भिक्षुको घेर लिया। वह चाहते ही थे कि, तलवारको चला दे कि, इसी समय जङ्गलसे गरजता हुआ एक शेर आ कूदा और डाकू जान लेकर भाग गये!" इस प्रकारकी और भी कुछ मेरी दिव्य शक्तिकी बातें लिखी थीं (पीछे इन अखबारोके झूठसे मुझे इतनी घृणा हो गयी कि, मैंने किसीकी कटिंगको रखना पसन्द न किया)। पाठकोको बड़ा ही मनोरञ्जन होता, यदि मै अखबारके ही शब्दोंमे इन बातोको कहता। शायद हेडिंग था—"अद्भुत शक्तिवाला बौद्ध भिक्षु, जिसे कभी किसी हिंसक जन्तुने नहीं छेड़ा!" खैर। मैंने उन सारी अद्भुत चमत्कारवाली बातोको स्याहीसे काट दिया और लेखको उनके हवाले किया। दूसरे दिन देखता हूँ कि, तेलकर महाशयके लेखमे जो दो-चार सच्ची बाते थीं, उनको भी उड़ा दिया गया है और जिन बातोको मैने काट दिया था, वह सब छाप दी गयी हैं। कुछ तो मोटे टाइपके साथ! तेलकरजी मुझसे कहा करते थे कि, "यहाँ अखबारवाले ऐसी ही सनसनीखेज खबरें चाहते हैं। हम क्या करे?" किन्तु पहले तो मुझे विश्वास नहीं पड़ता था। मेरे सिरपर तो खैर कुछ मोजिजाकी बाते ही थोपी गयी थीं; किन्तु इस घटनाके कुछ दिनो बाद एक चीनी प्रोफ़ेसर मिस्टर ल्यू (जो पहले मंचूरियाके चीनी विश्वविद्यालयमें अध्यापक थे और लड़कपनसे अमेरिकामें रहकर शिक्षा पायी थी) लन्दनमे आकर हमारे स्थानके पासमे ही ठहरे। उनसे भी मंचूरियाके बारे

में एक पत्र-संवाददाता मुलाकात करने आया। उन्होने सारी बाते ठीक तरहसे बतलायीं। वह मंचूरियाकी पूरी जानकारी रखते थे, इसलिए ही लीग आफ नेशन्स ने (अन्तर्जातीय सभा) जो मंचूरियाके लिए जॉच कमीशन बैठाया था, उसके चीनी सदस्यके यह सलाहकार थे। खैर, दूसरे दिन क्या देखते हैं कि, ल्यू महाशय सुर्ख चेहरेके साथ मुझसे पूछ रहे हैं—"आपने आजके "डेली हेरल्ड" में मेरे इंटरव्यूको पढ़ा है ?" मैने कहा-"मैने तो आजके "डेली हेरल्ड" मे आपका कोई बयान नहीं देखा।" उन्होंने कहा—"एक दोस्तने देखा है और कहा है कि, बहुत बुरा छपा है।" मै उस दिनके "डेली हेरल्ड" की कापी उठाकर गौरसे देखने लगा। दर-असल वह छपा था। मै सारे अखबारकी प्रत्येक लाइनको पढ़नेवाला थोड़ा ही हूँ। देखा तो उसमे लिखा है—"मंचूरियाके विश्वविद्यालयके एक बड़े प्रोफ़ेसर लन्दनमे आये हुए है। वह मंचूरियाके डाकुओंके बारेमे बड़ी जानकारी रखते है (याद रहे, यह वह वक्त था, जब अंग्रेज युवक-युवतियोको मंचूरियामें डाकू उठा ले गये थे, और, उस वक्त उनकी खबरे बड़े-बड़े टाइपोंमे छपा करती थीं, जिस कारण सारे मुल्कमे सनसनी फैली हुई थी)। प्रोफ़ेसर ल्यू कहते हैं—"वह डाकू साधारण डाकू नहीं है।" उनको जंगलकी ऐसी-ऐसी बूटियाँ मालूम है, जिनके इस्तेमालसे वह अन्तर्धान हो सकते है। वह उन बूटियोंकी मददसे अपने साथियोंके कटे सिरको जोड़ देते हैं। घोर जंगलो मे वह अपने देवताओंकी पूजा करते हैं, जिसके प्रतापसे वह जापान

क्या सारी दुनियाकी शक्तिको चैलेज कर सकते हैं।" (मैं स्मृति-से लिख रहा हूँ। कहीं मुझे भी पाठक विलायतका संवाददाता न समझ ले)। इसके बाद संवाददाताने यह भी जोड़ दिया कि, प्रोफेसर ल्यू स्वयं उनकी इन अद्भुत पूजाओंमे शामिल हुए है। इत्यादि-इत्यादि पूरे एक कालमे।

प्रोफेसर ल्यूकी अवस्थाके बारेमे कुछ न पूछे। वह कह रहे थे, "पढ़नेवाले क्या कहेंगे? जिस चीनी जातिका एक बड़ा प्रोफेसर ऐसी वाहियात बाते कह सकता है, वह कितनी गिरी होगी। मेरे देश-भाई पढ़ेंगे, तो मेरे बारेमे क्या खयाल करेंगे?" मैंने उन्हे बहुत समझानेकी कोशिश की और कहा कि, यही यहाँके अखबारोका आम कायदा है। मैंने अपना दृष्टान्त भी दिया; किन्तु वह काहेको माननेवाले थे। उन्होंने अखबारको खण्डनात्मक पत्र भी लिखा, किन्तु अखबारवाला उसे छापनेको बाध्य थोड़े ही था।

६ अगस्तकी शामको हम लोग हेम्पस्टेड गये। यह एक स्वाभाविक भारी जङ्गल है, जिसे उद्यानका रूप दे दिया गया है। लन्दनसे लगा हुआ है और हमारे यहाँसे तो करीब आध घंटेका ही रास्ता है। लन्दन शहर वैसे तो समतल भूमिमे नहीं बसा हुआ है। यह जगह विशेषकर इसकी प्रधान सड़क एक पहाड़ी-की रीड़ जैसीपर जाती है। यहाँ खड़े होकर लन्दनको दूरतक देखा जा सकता है। सायंकालको झुण्डके झुण्ड लोग उद्यान-चारणके लिए आते हैं। कहीं माँ-बाप अपने बच्चो और कुत्तोको लिए टहल रहे है। कहीं प्रेम-प्रेमिका गलबॅहियाँ डाले टहल या

लेटे हुए है। कहीं वृद्ध-वृद्धाएँ आपसमें वार्त्तालाप करते जा रहे है। यह वन भी ऊँचा-नीचा है और इसके सभी वृक्ष जङ्गली हैं। सिवा उनकी रक्षा और रास्तोंके बनानेके और कोई काम आदमीकी तरफसे यहाँ नहीं है।

भारतमें रहते सुना था कि, बिड़लाने लन्दनमें एक हिन्दू-मन्दिर जैसी संस्था, "आर्यभवन" के नामसे, स्थापित की है। हमारे यहाँ भी टेलीफोन था। मैंने गाइड उठाकर ढूँढ़ना शुरू किया, तो वह नाम मिल गया। दो-तीन दिन फोन किया, किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। देखनेकी बड़ी इच्छा थी। हेम्पस्टेड जाते हमने ड्राइवरको कहा कि, जरा उधरसे लेते चलो। खयाल नहीं, उस दिन श्रीदयाहेवावितारण (अनागारिक धर्मपालके भतीजे और लंदन बौद्ध मिशनके मैनेजर) स्वयं अपनी मोटर चला रहे थे या उनका ड्राइवर चलाता था। दयाको लन्दनमें रहते कई वर्ष हो गये। उनको लन्दनकी गलियाँ जितनी मालूम है, उतनी उनके ड्राइवरको भी मालूम नहीं है। खैर, आर्यभवनके मिलनेमे कोई दिक्कत नहीं हुई। यह बड़े आदमियोंके मुहल्लेमे अच्छी जगह पर है। जाकर देखा, तो ताला लगा हुआ है। लन्दनमें क्या, किसी भी बड़े शहरमें पड़ोसीको पड़ोसी नहीं जानता, किन्तु यहाँ हमारे सौभाग्यके पढ़ोसीको पता था। उसने बतलाया कि, मकान तीन माससे बन्द है। बार्डर, पुजारी कोई नहीं है। इतना लक्षण तो हमने भी द्वारपर देखा कि, ड्योढ़ीका निचला भाग मैलसे काला-सा हो गया है। आप इस श्रेणीके अँग्रेजके घरमे कभी जरा

भी इस तरहकी गन्दगी नहीं पायँगे। वहाँ तो लोग रोज एक बार किवाड़, खिड़की, चौखट, सीढ़ी, पावदान आदिको साफ करते है। बिछे हुए कालीनोंको भी गर्द-चूस झाड़ुओंसे साफ करते हैं। मालूम होता है, आर्यभवनके सञ्चालकोंने भी अपने यहाके निरक्षर और सफाईकी मूर्ति महाराज या बाबाजीसे ही लन्दनमे रसोई-पूजा लेना चाहा। तभी तो यह गन्दगी थी! लन्दन या यूरोपमे कोई भी धार्मिक संस्था चलानेमे, वहाँके लोगो और हवा-पानीका भी खयाल करना होगा। वहाँके लिए पुजारी और प्रचारक अधिक संस्कृत, शिक्षित और निरालस होना चाहिए। खैर, आर्यभवनको इस अवस्थामे देखकर बड़ा खेद हुआ!

आज सूर्य्य दिखलाई पड़ते थे; इसलिए लन्दन-निवासी खुशियाँ मना रहे थे। लन्दनमे आम तौरसे गर्मीमे तापमान ७० और ८० डिग्रीके बीचमे रहता है। ग्यारह अगस्तको तापमान छायामें ८८° (बाहर १३५°) डिग्री हो गया था और इतनेमे ही लोग व्याकुल हो गये थे। अखबारोंमे पढ़ा कि, कुछ आदमियोंकी, इस गर्मीके कारण, मृत्यु भी हो गयी। रातको लोग घरोसे निकलकर सड़कोंकी पगडण्डियोंपर सो गये थे। १८ अगस्तको तापमान ९१° हो गया था। उस दिन तो मैने भी कुछ गर्मी महसूस की। कॉचके बड़े-बड़े जङ्गलोको खोल देनेपर भी रातको बदनपर चादर नहीं डाल सका।

८ अगस्तको दो पंजाबी नौजवान मिलनेके लिए आये। इनमे एकका नाम श्रीयुत रामचन्द्र इस्सर (रावलपिण्डीके ब्राह्मण)

और दूसरेका नाम हंसराज खन्ना बी० ए० था। यह दोनो विद्यार्थी नहीं थे। व्यवसायके लिये किस्मत-आजमाई कर रहे थे। छः-सात साल हो गये, लन्दनमें आये। दोनोने शादी भी यहीं कर ली है। रामचन्द्रको एक तीन वर्षका लड़का कल्याणदास है, जिसकी माँ-नानी नाम ठीकसे न उच्चारण कर सकनेसे "केलन-केलन्" पुकारती है। हंसराजजीको एक लड़की है। रामचन्द्रजीकी स्त्री टाइप राइटिंग और शार्ट हैंड राइटिंग जानती है और हंसराजजीकी स्त्री पेरिसके फोटोकी माहिर है। दोनोंका जीवन बड़े साहसका है। रामचन्द्रजी दो भाई थे। लड़कपनमें ही इन्हे घोड़ेपर चढ़नेका शौक था। मिडिल स्कूलकी पढ़ाईमे भी ये विदेश-यात्राका स्वप्न देखा करते थे। आखिर बड़े होनेपर भाग गये। बम्बई या कराचीके बन्दरपर, इन्होने जहाजमे खलासीकी नौकरी कर ली। कई बार इस मुल्कसे उस मुल्क गये। जहाजका काम सीखकर इन्होने कुछ अच्छी जगह भी हासिल कर ली। फिर उन्हे मालूम हुआ कि, उसी कामके लिये जो खलासी भारतमें भरती किये जाते है, उन्हें तो बीस रुपया महीना मिलता है, और, जो लिवरपूलमें (इंगलैंड) भरती होते है, उन्हे २०) हफ्ता मिलता है! फिर क्या था, उन्होने इंगलैंड पहुँच कर अपने जहाजसे छुट्टी ले ली। अँग्रेज अधिकारियोमें, विशेष कर व्यापारियोंमे यह भी गुण है कि, यदि कोई नौकर उनकी मर्जीके बिना भी नौकरी छोड़ देता है, तो उसके कामके सर्टीफिकेटको देते वक्त खामखाह बुरा नहीं लिख देते। रामचन्द्रजी फिर इंगलैंडसे जहाजमें भरती हो गये।

तनखाह भी अँग्रेज मजदूरों-जैसी मिलने लगी। लोग उनको देखकर आम तौरसे ग्रीक या स्पेन-निवासी कहते है। लम्बा-चौड़ा शरीर, गोरा चेहरा और लम्बी नाक। सिर्फ बाल काला है। नये जहाजमे उनकी फुर्ती और कामकी मुस्तैदी देखकर वहाँ इंजिन-के काममें ले लिए गये। कुछ दिनोंतक उन्होने यह नौकरी की। कई मुल्कोकी सैर की। फिर उन्होंने लन्दनकी एक भोजनशालामें नौकरी कर ली और कुछ ही दिनोंमें हेडवेटर (परिचारकोंके मुखिया) हो गये। अब उनको तनखाह भी दो या तीन पौंड हफ्ते मिलती थी। कुछ पैसे जमा हो गये, फिर उन्होने अपनी एक दूकान खोल ली। तब उनकी शादी भी हो गयी थी। दूकान चलने लगी। इसी बीच संसारमें मंदीका चक्कर चल गया! बड़े-बड़े व्यापारी दिवालिए हो गये। फिर बेचारे रामचन्द्रके नये, छोटेसे पौधेका क्या कहना! तो भी वह साहसकी मूर्ति हैं। जब मैं वहाँ था, तब उन्हें। बेकारीके मदसे बाप-बेटे-बीबीके लिए २१ शिलिंग (१४ रु०) सप्ताह मिलते थे। अक्सर छोटे-छोटे दूकानदारोंको थोक बेचनेवालोंके यहाँसे माल देकर, वह दो-चार शिलिंग रोज कमा लेते थे। उन्होने किसी जगह एक हाटमे भी अपनी दौरी-दूकान (एक बक्समे कुछ सौदा) रखी। एक बार कोई सिनेमा-कम्पनी एक भारतीय फिल्म तैयार कर रही थी। उसे कुछ हिन्दुस्तानियोकी जरूरत थी। रामचन्द्रजी पहुँच गये। इन्हें तो उसने ले ही लिया और २०-२५ आदमियोको लानेको भी कहा। इन्होने जमा कर दिया। मैंने जिस समय लन्दन छोड़ा,

उस समय रामचन्द्र फिल्मस्टार बने हुए थे। वहाँ इनकी कद्र क्या? हाँ, बेकारीमें इन्हें ३० शिलिंग (२० रु०) रोज मिलते थे। यही बहुत है। इधर भदन्त आनन्दके पत्रसे मालूम हुआ कि, पीछे उन्होंने एक भोजनशाला खोली थी; किन्तु वह चल न सकी। चाहे कुछ भी हो, रामचन्द्र बड़े साहसी और व्यवहार-कुशल हैं। क्या जाने, किसी गहरे गोतेमें, उन्हें किसी बड़ी सफलताका रत्न मिल जाय। वह कह रहे थे कि, माँ लिखती है कि, "एक बार बहू-बेटेको लेकर चले आओ। मैं अब मृत्युके घाट-पर बैठी हूँ।" मैंने कहा, उन्हें बहूसे वही पंजाबिन बहूका खयाल होगा। केलन् और मिसेज इस्सरका थोड़े ही होगा।

हंसराजकी रामकहानी पूरी पूछ भी न सका। इतना सुना कि, उनके पिता धनी आदमी हैं। हंसराजने बी० ए० पास कर घर छोड़ दिया। कुछ दिनों बर्मामे रहे, फिर अमेरिका गये। वहाँसे, कई वर्ष हुए, लन्दन पहुँचे। यह सब बापकी कमाईमें आग लगा-कर नहीं। लन्दनमे उन्होंने भी अपनी दूकान खोली, किन्तु संसार-व्यापिनी मंदी पहुँच आयी! दूकान घाटा उठाकर तोड़ देनी पड़ी। तो भी रामचन्द्रकी तरह कोई छोटा-मोटा काम करके काम चलाते थे। मेरे रहते हुए उनके घरसे चिठ्ठी आयी कि, उनके घरमें काम करनेवाले (शायद बड़े भाई) तपेदिकसे मर गये! उनके लिए जहाजका किराया आदि देकर, पिताने आनेके लिए लिखा था। वह अपनी जन्मभूमि स्यालकोटको (!) लौटनेवाले थे।

पंजाबियोंके तीन सर्वोत्तम गुण हैं—साहस, व्यवसाय-बुद्धि और अतिथि-सेवा। इन तीन गुणोंको इकट्ठे मैं भारतके और किसी प्रान्तके आदमियोमें नहीं पाता। साहसके जीवनका मैं स्वयम् लड़कपनसे प्रेमी रहा हूँ; इसलिए ऐसे जीवनको कहीं पाकर, मै उसे प्रकट करनेके लालचको संवरण नहीं कर सकता।

६

लन्दनमें साढ़े तीन मास (ख)

समय-समयपर लन्दन-म्युजियम्‌के पुस्तकालयमें जाकर पुस्तकावलोकन करना मुझे जरूरी था। लेकिन इसके लिये पहले मेम्बर बनना होता है। ८ अगस्तको मैं, श्री श्रीनिवासाचारके साथ म्युजियम्‌के डाक्टर वर्नेटके पास गया। उनसे बात-चीत हुई। उन्होंने साधारण वाचनालय (Common Reading Room) और छात्र-वाचनालय दोनोंके लिये मेरी सिफारिश कर दी। उसी दिन मुझे मेम्बरीका टिकट मिल गया। मैं अपने पहलेके लेखोंमे बहुत लिख चुका हूँ कि, हर जगह मेरे पीले वस्त्रोंको देखकर लोग कौतुकाभ्रान्त हो, उधर नजर फेरे बिना नहीं रहते थे। इन बातोंको मेरी सारी यूरोप-यात्राके बारेमे समझना चाहिये। जब यूरोपके लोगोंको भिक्षुओंके पीले वस्त्र वहाँ कभी देखनेको नहीं मिलते, फिर उन्हे क्यों न अद्भुत-सा मालूम हो। म्युजियम्‌के पुस्तकाध्यक्षोंको भी मैंने बोडलिया लाइब्रेरीवालो

डाक्टर हरिप्रसाद शास्त्री

श्रीमती हेम्फरी
(लन्दन वृद्धिष्ट लाजकी मन्त्रिणी)

ही-सा मुस्तैद और सुजन पाया। मध्य एशियासे लाए हुए ग्रंथोंका बहुत-सा भाग यहीं है। अंगुल-भरकी टुकड़ियोंकी रक्षाके लिए भी काफी रुपये खर्च किये गये हैं। फिर हम लोग संग्रहालयको देखने गये। भारतीय विभागमें बहुत-सी, भारतके पुरातत्त्व और कला-कौशल-संबंधी चीजें संगृहीत हैं। अमरावती स्तूपकी बहुत-सी सुचित्रित संगमर्मरकी पट्टियाँ यहीं रखी हैं। मिश्र, असुर आदि देशोंकी भी बहुत-सी पुरानी चीजें यहाँ सुरक्षित हैं। बृटिश म्युजियम्-का पुस्तकालय दुनियाका सबसे बड़ा पुस्तकालय है। इसके वाचनालयमें हजारों आदमियोंके बैठकर पढ़नेका इन्तजाम है। इतना होनेपर भी कोई हल्ला-गुल्ला नहीं। जिसको भी कुछ बात करनी होती है, वह धीरेसे करता है। पुस्तकको भी बहुत धीरेसे उठाता है। यहाँ मुझे लघुशंकाके लिये जानेकी जरूरत हुई। एक तरफ नीचेकी ओर बहुत-से पेशाबखाने पाँतीसे बने हुये थे, वहाँ उतना पर्देका प्रबन्ध न था, न बैठकर पेशाब करनेका ही। पासमें ही पाखानेकी कोठरियाँ थीं। वहाँ गया, एक छेदमें एक पेनी (=एक आना) डाला, फिर पुर्जा घुमानेपर दर्वाजा खुल गया। पाखानोंकी सफाईका क्या कहना। गंधका नाम नहीं। पानीकी जगह वहाँ पासमें कागजका गोला लटकता रहता है। हमारे भारतीय कितने ही इसपर नाक-भौं सिकोड़ेंगे। उनको तो पसन्द यह आयेगा कि, लोटेका पानी ले जाया जाय; और, आबदस्त लेते वक्त सारी बैठने और पैर रखने-

की जगहको भिगा दिया जाय। हमारी सफाई हो गयी न? 'अपनी घानी निकल गयी, अब तेलीका बैल चाहे मर न जाय।'

श्री श्रीनिवासाचार मद्रासकी तरफके एक पंडित-पुत्र ब्राह्मण हैं। लन्दन विश्वविद्यालयका एम्०-ए० करके इस साल पी० एच-डीकी परीक्षा उन्होने दी है। संस्कृत और इतिहास उनका विषय है। डाक्टर बर्नेट उनके प्रोफेसर हैं; और, उन्हे बराबर बृटिश म्युजियम आना पड़ता है। उन्हींके साथ मुझे लौटना भी पड़ा। आते वक्त तो हम मोटर बससे आये थे, अब सलाह ठहरी कि, भूगर्भ-रेलसे चले। टोटेनहम्का स्टेशन बहुत दूर नहीं है। सेटफार्ममें मामूली-सा एक फ्रेमका दर्वाजा लगा था, जिसके ऊपर यु (u) अक्षर (=Under ground=अन्तर्भूमि) लिखा हुआ था। दस कदम नीचे उतरते, बिजलीसे जगमगाती कुछ समतल भूमि आ गयी। जरा और आगे एक किताबो और अखबारोंकी दूकान थी, दूसरी ओर टिकट मिलनेकी जगह थी। श्री निवासजी जाकर दो टिकट लाये। अब एक तरफ़ सर्पगतिसे नीचे जाती, तथा पैर रखनेके स्थानोको सीढ़ीकी भाँति बनाती-बिगाड़ती सीढ़ी नीचेकी ओर जा रही थी। यह सभी लोगोंके आफिसोंसे घर जानेका समय था; इसलिये सभी लोग शीघ्रतासे आगे बढ़ रहे थे। मुझे तो सीढ़ीमें पैर रखनेसे भय लगता था। कमसे-कम जल्दीमें पैर रखनेसे तो जरूर। कहाँ अभी हम स्थिर भूमिपर खड़े हैं, यदि मैं दाहिने

पैरको चल, फर्शपर रखते ही, जल्दीसे, दूसरे पैरको भी उठाकर न रख दिया, तो एक पैर आगेकी ओर चल देगा और दूसरा पैर ताकता रह जायगा। साथ ही हाथ रखनेका जो कठघरा भी तो चल रहा है! लन्दनमे रहते वक्त मै हमेशा ही इन्हीं सीढ़ियोंके कारण भूगर्भ-रेलसे जानेमे परहेज किया करता था। उस दिनके बाद शायद एक ही बार और मै उस रास्ते गया हूँगा। श्रीनिवास-जी मुझे मेरे स्थानपर छोड़ कर चले गये।

९ अगस्तको एक श्यामवर्ण, स्थूलकाय युवक ग्यारह बजेके करीब हमारे पास आया। कहने लगा, १५, १६ वर्ष पूर्व, जब उतने ही वर्षोंका था, भागकर लंकासे लन्दन आ गया। तबसे मैं यहीं हूँ। मेरी पहली स्त्री मर गयी, दूसरी स्त्रीसे दो पुत्र हैं, जिनकी उम्र १०, १२ वर्षकी है। इतने दिन यहाँ रहते हो गये, कभी मुझे न अपने भिक्षु मिले, न अपना विहार देखा। आज डेली हेरल्ड पत्रमे पढ़ा कि, रिजेन्टस पार्कके पास हमारा चर्च है। आज सबेरेसे ही मै घरसे निकला। मकानका नम्बर आदि नही मालूम था, इसलिये घंटोके परिश्रमके बाद, यहाँ पहुँचा हूँ। आज मुझे बड़ा आनन्द हुआ। दूसरी बार मै अपनी स्त्री और बच्चो-को भी लाऊँगा। बोलते वक्त उस तरुणके नेत्रों और चेहरेसे उसके भीतरी भाव अच्छी तरह प्रकट हो रहे थे। और कुछ पूछनेके बाद आनन्दजी तो उसे मन्दिरमे ले गये, जहाँ पन्द्रह-सोलह वर्ष बाद, उसने अपने बचपनके परिचित शब्दो त्रिशरण और पंचशील, अपने लड़कपनके परिचित पीले वस्त्रवाले भिक्षुके

मुखसे ग्रहण किया। वह अपनेको कृतकृत्य समझने लगा। यद्यपि उसका मकान वहाँसे १३, १४ मीलपर लंदनके दूसरे छोरपर था, तो भी वह हर दूसरे-तीसरे रविवारको, बहुधा अपनी स्त्री और बच्चोंको लेकर, भगवान्‌को चढ़ानेके लिये फूलोंका गुच्छा भी कितनी बार लिये आता था। स्त्री और लड़के सभी सुशील हैं। वह एक समूरके (Fur) कारखानेमे काम करता है। अपने काममें बड़ा होशियार है। २॥-३ पौंड सप्ताह वेतन मिलता है। लड़कोंको बड़े प्रेमसे पढ़ा रहा है। कह रहा था, एक बार लंका जानेका मन तो करता है; किन्तु लड़के-बच्चोंको साथ ले जानेमें बहुत खर्च पड़ेगा। अब तो हमारा चर्च लंदनमें भी हो गया है, यहीं भगवानके दर्शन कर अपनेको कृतार्थ समझेंगे। मुझे उसके परिवारकी स्मृति बहुत मधुर मालूम होती है। मुझे उसका परिवार, मेरा आराध्यदेव आदर्श श्रमजीवी परिवार मालूम होता था।

जिस समय वह सिंहल-तरुण आकर हमसे बात करने लगा, उससे पहलेसे ही एक भारतीय महाशय अजीज (हमीरपुर जिलेके निवासी) हमारे पास बैठे हुये थे। सिंहलतरुणको अपनी भाषा भी आधी भूल-सी गयी थी, और, उसकी अंग्रेजी लंदनके श्रमजीवियोंकी बोली थी, जिसको समझनेमें हम लोगोंको कठिनाई हो रही थी। उसमे ग्रामरका कचूमर निकालकर रख दिया गया था, अथवा वह अपना अलग ही ग्रामर (व्याकरण) रखती थी। अजीज उसके मन्दिरकी ओर जानेके बाद नाक-

भौं चढ़ाकर कहने लगे, देखो तो भलेमानुषको इतने दिन आये हो गये, शुद्ध भाषा बोलने भी नहीं सीखा, किसी पासकी रात्रि-पाठशालामे, वर्ष-छः महीने जाता, तो भी सुधार हो गया होता। अजीजको मैं एक मस्ताना श्रमजीवी फिलासफर मानता हूँ। उसकी आजाद खयाली और मस्तानी चालपर मैं मुग्ध हूँ। अजीजको भी इङ्गलैड आये पन्द्रह, सोलह नहीं तो दस-बारह वर्ष जरूर हुए होगे। वह कोई सुशिक्षित यहाँ नहीं आये थे; लेकिन यहाँ आकर मालूम होता है, उन्होंने कुछ समयतक रात्रि-पाठशालाओंमें हाजिरी जरूर दी, क्योंकि उनकी भाषा देहाती नहीं है। मालूम होता है, आरम्भमें उन्होंने कुछ काम भी किया होगा; किन्तु अब कितने ही वर्षोंसे यह खानाबदोश घुमक्कड़ हो गये है। इङ्गलैड, स्काटलैड, आयर्लैण्ड सब इनकी यजमानी हैं। रेल या मोटरबससे सफर नहीं करते, बस अपने पैरोंसे। बदनपर हैट, लम्बा कोट, कोट, पतलून, बूट जो कुछ था, वही उनकी सम्पत्ति है। और न कोई धन न दौलत। उन्हे देखकर मुझे रश्क आता था। कैसे काम चलता है, यह जिज्ञासा होते हुए मैंने भी नहीं पूछा। इस बेसरोसामानीमे भी वह आदमी दीन न था। मैंने इसके बाद इन घुमक्कड़ोके (जिन्हे वहॉके लोग ट्रम्पर कहते है) बारेमे विशेष जाननेकी कोशिश की। पीछे मुझे अपने सभासदोमे एक ही एक घुमक्कड़ मिल गये, जिन्होंने कुछ ही मास घुमक्कड़ी छोड़ी थी। यह बड़े ही संस्कृत और अध्ययनशील व्यक्ति है। घुमक्कड़ीके स्वतंत्र जीवनने इन्हे आकृष्ट किया था। उनसे

मुझे इङ्गलैंडके गरीबों और घुमक्कड़ोंके बारेमें बहुत कुछ मालूम हुआ।

उन्होंने बतलाया, घुमक्कड़ लोग दल बांध कर नहीं घूमा करते। अकेले, और कभी दो-तीनकी संख्यामें रहते हैं। असली घुमक्कड़ हाथसे काम करनेको हराम समझता है। धूप, वर्षा उसके लिये कुछ नहीं है। देहातमें किसान लोग दयालु होते हैं। एक घुमक्कड़ जाकर किसी घरके द्वारपर दस्तक लगाता है। आदमीके आनेपर कहता है—"क्या मेहरबानी करके एक प्याला चाय और एक टुकड़ा रोटी देंगे?" नहीं, बहुत कम ही जगह मिलती है। इस प्रकार रोटी, चाय ले—थैंक यु (धन्यवाद) कह, वह वहाँसे चल देता है। हाँ, शहरोंमें कुछ अधिक दिक्कत होती है, तो एक घुमक्कड़ दूसरे घुमक्कड़को अपने तजरबेसे फायदा पहुँचाता है। वह बतला देता है, लन्दनके अमुक-अमुक मुहल्ले धनियोंके हैं, वहाँ नहीं जाना चाहिये; क्योंकि वह लोग माँगनेपर कुत्ता छोड़ देते है या फोन करके पुलिसको बुला देते हैं। इङ्गलैंडमे माँगना अपराध है। यदि फिलासफर अजीजको कोई ऐसी बात कहता, तो वह चार सुनाकर फिर कहता—जाड़ा, गर्मी सहनेवाले पैरो, एक जगहसे दूसरी जगह घूमनेवाला, सूखी रोटी और एक प्याला चाय माँग कर खा लेनेपर, तो अपराधी; और, यह जो बड़े-बड़े कारखानेवाले, दूकानवाले, बैंकवाले, जो बिना माँगे ही दाँव-पेंच लगाकर, मजदूरों और किसानोंकी गाढ़ी कमाईका आधा हड़प लेते हैं, यह तो भलेमानुष हैं न? खैर!

घुमक्कड़ लोग मजदूरो और मध्यम श्रेणीके मुहल्लोंमें ही जाते हैं। उन लोगोमे ही सहानुभूति और दया-भाव है। वहाँसे जरूर उन्हे कुछ मिल जाता है।

घुमक्कड़ोके बारेमे उक्त सज्जनने मुझे कई पुस्तके पढ़नेको दी। उनमें डेविसकी (Davis) एक महा घुमक्कड़की आत्मकथा (Autobiography of a Super-Tramp) मुझे वड़ी ही पसन्द आई। यह घुमक्कड़ डेविस एक कवि और लेखक था। उसकी घुमक्कड़ीका क्षेत्र इङ्गलैड ही नहीं, युक्त राष्ट्र अमेरिका भी था। अपने ग्रंथमे उसने घुमक्कड़ोकी परस्पर सहानुभूति और सहायता, नयी-नयी मुसीवतोके झेलने और नये स्थानोंको देखना आदि वड़े सजीव भाषामें लिखा है। उसने यह भी लिखा है कि, जाड़ेकी गर्मीसे बचनेके लिये कैसे घुमक्कड़ लोग अमेरिकामें, मजिष्ट्रेट, जेलरकी सहायतासे इच्छानुसार जाड़े-भरकी कैद ले लेते थे। जाड़ेमे जेलमे खाने, कपड़े, आग सभीका उनको आराम रहता था। हाॅ सरकारसे मिलनेवाली रसदमे उन्हे मजिष्ट्रेट और जेलरको भी शामिल कर लेना पड़ता था। आमतौरसे जेलरके आदमीके दिए पैसेसे ही गहरी शराव उड़ेली जाती थी, फिर अंड-बंड बोलते, लड़-खड़ाते बाजारसे निकलना पड़ता था। पुलिस पकड़कर चालान करती थी, फिर पहलेसे निश्चित, ४ या ५ मासके लिये जाड़ोमे सरकारकी मेहमानी मिल जाती थी।

यूरोपमे हमारे यहाॅके खानावदोश, डोम आदि जातियोकी

भाँति एक खानाबदोश जाति है, जिसे इङ्गलैंडमें जिप्सी और यूरोपके बहुतसे मुल्कोंमें रोमनी कहते हैं। इस जातिकी भाषाकी परीक्षासे मालूम हुआ है कि, भारतसे ही पश्चिममे गए हैं। रोमनी शब्द भी डोमनी या डोम शब्दसे ही निकला है। इस जातिने भी सहस्राब्दी-पर्यन्त घुमक्कड़ीका जीवन बिताया, जैसा कि वह आज भी भारत और ईरान आदिमे करती है। लेकिन इङ्गलैंड आदि देशोंमे अब उन्होंने अपना वह जीवन छोड़ दिया है। मुझे उनके बारेमे जाननेकी बड़ी इच्छा थी। उक्त भूतपूर्व घुमक्कड़ महाशयसे ही पता लगा कि, अब इङ्गलैंडमें शुद्ध जिप्सी नहीं मिलते। उन्होंने सौ वर्ष पूर्व एक जिप्सी लेखक लिखी द्वारा लावेङ्रू (Lavangro) मुझे पढ़नेको दी। वह भी मुझे बहुत पसन्द आयी। इन पुस्तकोंको पढ़ते हुए मुझे अपने घुमक्कड़ जीवनकी कुछ बाते याद आने लगती थीं। सच है, सारी दुनियामें फर्क चमड़े ही इतना गहरा है।

एक दिन रामचन्द्रजीसे लन्दनके गरीबोंके विषयमे बात होने लगी। मैंने उनसे पूछा, वह कहाँ रहते हैं, क्या उनमे सबको सरकारी खजानेसे मुहताजी मिलती है? उन्होंने बतलाया—मुहताजी तो उन लोगोंको मिलती है, जिन्होंने मजदूरी करते वक्त हर हफ्ता कुछ पैसे बेकारी-बीमा-कोशमें जमा किया है। और यह हरएकको जमा करना ही पड़ता है। बेकार होनेपर भी हमेशा थोड़ी ही मुहताजी मिलती रहेगी। पहले कुछ ज्यादा दिनोतक देते थे; किन्तु जबसे नयी अनुदार सरकार हुई है, तबसे

सहायताका समय ७, ८ सप्ताह ही रख दिया है। मैंने पूछा—फिर वह लोग क्या करते है? बतलाया—भीख माँगेंगे या घुमक्कड़ी करेंगे। मैंने पूछा—भीख माँगनेपर पुलिस नहीं पकड़कर ले जायेगी? बतलाया—जो खुले भीख माँगते हैं, वह पुलिसकी आँख बचाकर गलियोंमे जाकर माँगते हैं। दूसरे, देखा नहीं, पुरुष सड़कोंपर दियासलाई लिए खड़े रहते है, या पगडंडी या समुद्र-तटके बालूपर खड़ियासे चित्र बनाया करते हैं, अथवा लड़ाईके मेडलोंको लगाए, अकेले या दो-तीन आदमी मिलकर, सड़कपर बाजा बजाते है, या ठेलेकी गाड़ीपर फोनोग्राफ ही लेकर बजाते हैं, इन सब कामोंका अर्थ लोग भीख माँगना समझते हैं; और, पैसा दे देते है। स्त्रियाँ फूल बेचनेके बहाने भीख माँगती है। मैंने पूछा—यह लोग रहते कहाँ है? बतलाया—चलिये इस वक्त (दो बजे दिनको) मै रिजेन्ट्स् पार्क, हाइड पार्क आदि उद्यानोंमें पचासों आदमियोंको घासपर सोते दिखा दूँ। नौ बजे शामको सारे बाग बन्द हो जाते है, उस वक्त यह लोग सो नहीं सकते; इसलिये इसी वक्त सो लेते है। रातको सड़ककी पगडंडीपर इधरसे उधर घूमते रहते है, या प्राइमरोज जैसी एकाध खुली जगहोंमे पड़े रहते हैं। लन्दनसे बाहर जानेका मतलब, एक दिनका रास्ता नापना। (नगर उपनगर मिलाकर ७० लाखसे ऊपर आदमी लन्दनमे बसते है)। मैंने पूछा—मुहताजखानोंमें (Workhouse) यह क्यो नही चले जाते? बोले—वहाँ खाना रद्दी मिलता है। और यदि एक बार आदमी उसके भीतर चला

गया, तो फिर उसे बाहर काम ढूँढ़नेका मौका नहीं रहेगा; और, वह हमेशाके लिये वहीं कैद-सा हो जायगा। कितने लोग मुहताजो-मे अपना नाम लिखना लज्जाकी बात भी समझते है। और यदि इंगलैण्डके सभी बेकार लोग मुहताजखानोंमें जाने लगे तो जगह कहाँ रहेगी? यह भी पता लगा कि, लन्दनमे बेघरवालोंके सोनेके कुछ घर है, जिनमें चारपाई, ओढ़ना और बिछौना मिलता है। लेकिन वहाँ एक रातके सोनेका १ शिलिङ् देना पड़ता है। जहाँ एक रूमालकी धुलाई ३ पेनी (=३ आना), एक चद्दरकी धुलाई १ शिलिङ् हो, पाखाना भी नहीं जा सकते, जबकि, दर्वाजेमें डालनेके लिये १ पेनी पास न हो, वहाँ दरिद्रका जीवन कितना संकटमय होगा?

२४ अगस्तको विलियम् मुझे बृटिश म्युजियम पहुँचा आये। हमको नये अन्वेषण सम्बन्धी मासिकपत्रोंको पढ़ना था। जिस वक्त, वहाँ हम पढ़ रहे थे, तो वहाँ एक मेजपर एक घनश्याम-काय वृद्ध, ठिगनी मूर्ति, नीले रंगका साफा लगाके बैठी थी। हमारे पीले कपड़ेको देखकर उन्होने पास आ प्रणाम करके, मेरे बारेमे पूछा, और, पूछनेपर अपना परिचय दिया—मैं कर्नाटकका रहने-वाला हूँ, यहाँ २५ वर्षसे रहता हूँ। मेरे बाल-बच्चे सब यहीं हैं। यह भी मालूम हुआ कि, आनन्द राय चिन्नप्पा (यही उनका नाम था) हिन्दी, मराठी, कनारी, तेलगू, तामिल, मलयालम् आदि भारतीय भापाओंके अतिरिक्त इंग्लिश, फ्रेञ्च आदि यूरोपीय भाषाओंको तथा अरबीको भी जानते हैं, कुछ भापाओंके

परीक्षक भी होते हैं। यहाँ पढ़ानेका काम करते हैं और जाड़ोंमे यूरोपमें जाकर कुछ व्याख्यान दे आते हैं, इस तरह जीवन-यापन करते हैं। जब मैं निवासस्थानपर लौटनेको बाहर निकला और विलियम्‌की प्रतीक्षा कर रहा था, तो उस समय आनन्दरायजी आ गये। उन्होंने कहा, चलिये मै पहुँचा देता हूँ। अब हमारी बात, सारे रास्ते भर, हिन्दीमे होती रही। उन्होने अपने साफेके बारेमें अभिमानसे कहा, मै कभी हैट नहीं लगाता, बराबर साफा बाँधता हूँ, चाहे लन्दनमें हों चाहे यूरोपमे। मेरे पीले वस्त्रोंको देखकर उनका अपना भाव जाग उठा था। उन्होने कहा—यदि हम लोग हैट लगाते हैं, तो यहाँवाले निग्गर (हब्शी) कहने लगते हैं।

हम लोग कुछ रास्ता भूल-से गये। एक महिलासे उन्होंने जगहका नाम पूछा। उसके जवाबके साथ ही बोल उठे, ओह! आप स्काटलैण्डके अमुक स्थानकी है? महिलाने कहा—"हाँ, आप कैसे जानते हैं?"

"क्यों, मेरी स्त्री वहींकी हैं। क्या आप एक दिन मेरे घर चाय पीनेके लिये नहीं आ सकती है?"

चाय पीनेका समय भी नियत हो गया। इससे मुझे मालूम हुआ कि, आनन्दरायजी कितने मिलनसार है। मेरे स्थानपर छोड़नेके बाद उन्होने कहा—आजकल मेरा लड़का और पाँचो लड़कियाँ घरपर आये हुए है। कुछ दिनोमे वह अपने-अपने

कामपर चले जायँगे। मैं भी कुछ दिनोंमें व्याख्यानके लिये यूरोप चला जाऊँगा। आप एक दिन मेरे यहाँ चाय पीये तो अच्छा। मैने मंजूर किया।

२८ अगस्तको एलिस् महाशय ३ बजे मोटरपर मुझे श्री आनन्दरायके मकानपर ले गये। ऊपर एक या दो कमरे थे, सो तो मैं नहीं जानता ; किन्तु नीचे एक छोटा-सा बैठकका कमरा था। एक खिड़की, वह भी बन्द थी। आनन्दरायने अपनी पाँचो लड़कियों और पुत्रसे परिचय कराया। मालूम हुआ, चार लड़कियाँ अब अध्यापिकाएँ हैं; और, पुत्र तथा छोटी लड़की पढ़ रही हैं। पुत्र कालेजमे पढ़ रहा था। लंदनमें इतने बड़े परिवारका चलाना मुश्किल है; इसलिये चार लड़कियोंको काम करना पड़ता है। वहीं फ्रांसके एक विश्वविद्यालयमें अंग्रेजीके प्रोफेसर तथा एक कर्नाटकीय सज्जनसे भी परिचय हुआ। लड़के-लड़कियाँ बुद्धधर्मके सम्बन्धमें कितने ही प्रश्न करते रहे। घंटा-भर रहकर मैं वहाँसे लौट आया।

श्री ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीसे पता मालूम हुआ था कि, श्री चम्पतराय जैन (बैरिस्टर) अब लंदनमे ही रहकर जैन धर्मके प्रचारका काम करते हैं। मेरी और आनन्दजी दोनोंकी ही, उनसे मिलनेकी बड़ी इच्छा थी। उधर ब्रह्मचारीजीने चम्पतरायजीको पत्र भी लिख दिया था। फोनसे बात हुई, एक दिन वह हमारे स्थानपर आये। मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। २६ अगस्तको हम

लोग गोल्डर्सग्रीनके क्लीव-लैण्ड-गार्डन मुहल्लेमे, उनके पास पहुँचे। यह नयी बस्ती है—स्वच्छता, फूल-फुलवारीके अतिरिक्त यह स्थान शान्त भी बहुत है। चम्पतरायजी वृद्ध और अनुभवी पुरुष हैं। जैनधर्मपर उन्होने अंग्रेजीमे कई पुस्तके लिखी है। बुढ़ापेमे कहाँ लोग हाथ-पैर डाल देते है, और, कहाँ—इन्होने अपनी बैरिस्टरी छोड़, विदेशमे रह, धर्म-प्रचारका काम उठाया है। जैनधर्म यूरोपीय लोगोके लिये और भी कठिन है, इसमे सन्देह नहीं, तो भी धर्म व्यक्तिगत चीज है। यूरोपमे भी ऐसे पुरुष मिल सकते है, जिनके चित्तको भगवान् महावीरकी शिक्षासे शान्ति मिल सकती है। कितनी ही बार हमे श्री चम्पत-रायजीसे वार्तालापका मौका मिलता रहा। और हमारा बन्धुत्व बढ़ता गया। वस्तुतः विचार-भेद होना तो चेतन होनेका धर्म है। आपके ७५ विचार यदि एक होंगे, तो २५ मे फर्क़ जरूर होगा। प्रेम और सहानुभूतिकी नींव विचार-भेदके ध्वंसपर नहीं डालनी चाहिये। विचार-भेदका अन्तिम अन्त तो चेतनाके विनाश-पर ही हो सकता है। और फिर हम तो एक संस्कृति, एक इतिहास, एक जातिकी सन्तान थे। विचारोमे भी बहुत-सी समानताये थी। २२ अक्तूबरको हम दोनोका श्री चम्पतरायजीके यहाँ निमन्त्रण था। बारह बजेसे पूर्व ही हम वहाँ पहुँच गये। आनन्दजी तो भोजनमे चम्पतरायजीके सवर्गीय ही ठहरे। हमे भी उस फला-हारमे शामिल होना पड़ा। चम्पतरायजीकी जन्म-भूमि दिल्ली है। वहाँ भोजनमे दिल्लीका अचार तथा कुछ और चीजे थीं। हम तीनो

भारतीयोंके अतिरिक्त वहाँ चार देवियाँ भी थीं। जिनमें चम्पतराय-जीकी गृह-स्वामिनी जर्मन-महिला थीं। एक बड़ी ही समझदार कुमारी और उसकी बहिन फ्रेंच थीं; और, यदि मैं भूलता नही, तो एक और अंग्रेज महिला थीं। भोजन आरम्भ हुआ और उधर बात शुरू हुई! आनन्दजीके भोजनमे शायद आमका अचार या कोई ऐसी चीज चाकूसे काटनेकी थी। जिन्दगी-भर घास खानेवाले छुरी-कांटेका प्रयोग कैसे जानें! जब वह काट नहीं सकते थे, तो पासकी देवीने बड़े ही मधुर शब्दोंमें कहा—I feel motherly (मैं इनके प्रति मातृत्व अनुभव कर रही हूँ)। यह तीन शब्द जो उस समय बड़े ही अकृत्रिम ढंगसे निकले थे, हमारे हृदयके अन्तस्तल तक पहुँच गये। चम्पतराय-जीने कहा—हमारी बातें तो यह बराबर सुनती रहती है। आज आपकी बातें इन्हे सुनना चाहिये। यह युवती बड़ी समझदार ही न थीं; बल्कि वह साम्यवादी विचारकी थीं। उसने कई प्रश्न धर्मोंके विरोधमे किये। जब उसने कहा—ईश्वर माननेका मतलब तो हम अपनी जवाबदेहीको छोड़ दूसरेके भरोसेपर छोड़ देना है, अबतक चली आयी रूढ़ियोंको मजबूत करना है। जब उसे उत्तर मिला कि, बौद्ध तो ईश्वरको मानते ही नहीं, वह तो मनुष्यको व्यक्तिगत या समष्टिगत रूपसे, अपने भविष्यका मालिक मानते है। आत्माके बारेमे मैंने कहा—यह अकस्मात् तुरन्त पैदा हुई चीज नहीं; बल्कि करोड़ो वर्षोंके विकासका परि-णाम है। और इसका विकास इसी शरीरमे रुक नही जायगा,

आगे भी चलता रहेगा। यह नित्य एक रस चीज नहीं; बल्कि क्षण-क्षण कर्मानुसार नयी होनेवाली चीज है। अंग्रेजीमे यह being नहीं है becoming है। उसने मार्क्सके अनुयायीके तौरपर बहुतसे प्रश्न पूछे; और, उसे सभी बातोंका सन्तोषप्रद उत्तर मिला। वस्तुतः धार्मिक नेताओंमें यदि मार्क्सका अच्छी तरह कोई साथ दे सकता है, तो बौद्ध ही दे सकते हैं।

देरतक बातचीत करके हमलोग लौट आये।

७

लन्दनमें साढ़े तीन मास (ग)

लन्दनके गरीबोंके मुहल्लेको देखनेकी बड़ी इच्छा थी। ३० अगस्तको हम लोग लन्दनके पूर्व-अन्तको (East end) देखने गये। लन्दनका पश्चिम-अन्त (West end) धनियोंका और फैशनेबुल स्त्री-पुरुषोंका मुहल्ला है और पूर्व-अन्त गरीबोंका। द्वितीय रौण्ड टेबुल कान्फ्रेंसके समय जाकर महात्मा गाँधी यहीं कुमारी लिस्टरके किङ्सले हालमें ठहरे थे। हम सीधे वहाँ न जाकर, पहले ट्वाइन बी हाल (Toyn bee Hall) देखने गये। यहाँपर समाज-सेवाका काम होता है और इसके लिए विश्वविद्यालयोंके छात्र और छात्राएँ भी सेवाके कामकी क्रियात्मक शिक्षाके लिए यहाँ आती है। शिक्षा, संगीत, चिकित्सा आदि किन-किन तरीकोंसे गरीबोंकी सेवा की जा सकती है, इसकी यहाँ क्रियात्मक शिक्षा मिलती है।

वहाँसे फिर हम पूर्व-अन्तके किङ्सले हालमे पहुँचे।
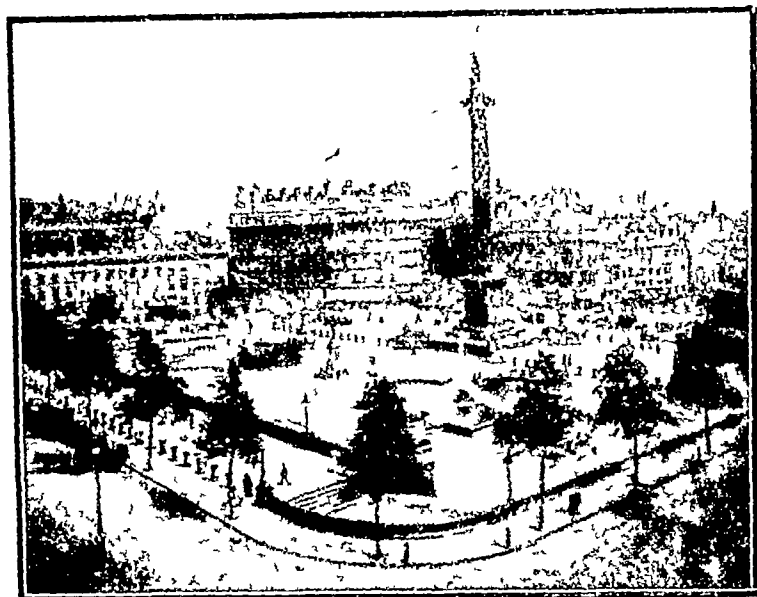
लन्दन—ट्रेफल्गार् स्क्वायर

लन्दन—पार्लमेंट-भवन

लन्दन—श्रीमती शास्त्रिणी

(बरेली निवासी डाक्टर हरिप्रसाद शास्त्रीकी धर्मपत्नी)

मकान, द्वार, जङ्गले सभी यहाँ छोटे-छोटे हैं। स्त्री-पुरुषोंके पुराने, मैले वस्त्रोंसे भी—आपको पता लग जायगा कि, हम किस मुहल्लेमे आये हैं। हमे मोटरसे उतरते ही आस-पासके लड़कोंने 'गंती, गंती' कहना शुरू किया। कुमारी लिस्टर उस वक्त वहाँ न थी, किन्तु स्थानापन्नने हमे सभी चीजोंको अच्छी तरह दिखलाया। एक बड़ा सभा-भवन है। द्वारकी बगलमे ही एक छोटी-सी कोठरी है, जिसमें नियत समयपर मौन-चिन्तन किया जाता है। हम हालमे पहुँचे। उसे मजदूर मंचके एक नाटक खेलनेके लिए तैयार किया गया था। आखिर गरीबोंको भी दिल बहलानेकी चीजें चाहिए। यह नहीं कि, गरीबोंके सुधारके लिये, बस अब योगाभ्यासकी शिक्षा देने लग जायँ।

कुमारी लिस्टरने पास-पड़ोसके गरीबोंके लिए जहाँ विद्योन्नतिके लिए अध्यापन और पुस्तकालयका प्रबन्ध किया है, वहाँ वयस्कोंके दिल बहलानेके लिए नाच, गानाका भी (नाटकका भी समय-समयपर) प्रबन्ध रखा है। पीछेकी ओर उद्यानमें लड़कोंके खेलनेके लिए झूला, फिसलुआ, तथा दूसरे खेलोंका इन्तजाम है। एक मकानमें छोटे बच्चोंको नहलाने-धुलाने तथा खिलानेका प्रबन्ध है। गरीबोंके घरमें नहानेका पानी भी नहीं तैयार हो सकता, उनके लड़के यहाँ नहलाये जाते हैं। उन्हे दूध और दूसरी खानेकी चीजे दी जाती है। चूँकि तीन-चार वर्षके लड़कोंको अक्षरका ज्ञान नहीं होता, इसलिए चीजोंको पहचाननेके लिए, उनकी

कुर्सियोंपर कुत्ते, बिल्ली, मुर्गी आदिकी तस्वीरें बनी रहती हैं। यह लड़कोंका मकान प्रधानशालासे थोड़ा हटकर है। शालासे ऊपर जाकर हम उस छोटी कोठरीमें पहुँचे, जिसमें महात्मा गाँधी रहे थे। वहाँ अब भी चर्खा और उनका सूत मौजूद था। कुछ फोटो भी उनके वहाँ टँगे थे।

१४ सितम्बरको अन्तर्राष्ट्रीय धर्मविद्या आन्दोलनकी ओरसे सभी धर्मोंके व्याख्याताओंका व्हाइट फील्ड गिर्जामें व्याख्यान था "भयको कैसे जीता जाय।" आनन्दजी भी उसमें बोलनेवाले थे। कर्नल सर यङ्ग हरबण्ड १९०४ ई०में तिब्बतपर चढ़ाई करनेवाली सेनाके सेनापति आजकी सभाके सभापति थे। मैं भी साथ गया। पहला व्याख्यान आनन्दजीका ही था। यद्यपि मिशनसे बाहर इङ्गलैंडमें उनका यह पहला ही व्याख्यान था, तो भी अच्छी तरह बोले। इसी व्याख्यानमें डाक्टर हरप्रसाद शास्त्रीसे मुलाकात करने-का सौभाग्य प्राप्त हुआ। युद्धके वक्त शायद मैंने 'सरस्वती' को उनके जापानमें सांस्कृतिक कामके बारेमें पढ़ा था। आजकल कितने ही वर्षोंसे आप लन्दनमें ही रहते हैं। आपके साथ आपकी जापानी धर्मपत्नी भी रहती है। शास्त्रीजीका जन्म बरेलीका है। बहुत दिनोंतक काशीमें रहकर आपने संस्कृत पढ़ी। बरेलीके पंडित खुन्नीलाल शास्त्री, जो इधर कई शताब्दियोंके बाद मध्य देशके प्रथम ब्राह्मण संस्कृत विद्वान् बौद्धधर्ममें दीक्षित हुए थे—का आपपर बड़ा प्रभाव पड़ा था। वैसे तो १९१०ई०में मुझे भी शास्त्रीजीके दर्शनका, बरेलीमें, सौभाग्य प्राप्त हुआ था; किन्तु उस

समय मुझे इतना ज्ञान न था। मैंने शास्त्रीजीसे कहा—आपको कभी-कभी हिन्दीके पत्रोंमे कुछ लिखना चाहिये, ताकि आपके बारेमे लोगोंको कुछ पता तो लगता रहे। कहा— १५-१६ वर्षसे अभ्यास छूट गया है। मैंने कहा—एक बार जन्म-भूमिका दर्शन करना चाहिए। कहा—इच्छा तो है। बड़े ही भावुक और प्रेमी जीव है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती शास्त्री स्वयं कलामें बड़ी ही निपुण है। एक जापानी सम्भ्रान्त बौद्ध कुलकी लड़की है। पति-पत्नी दोनोंके हृदय और जीभसे हमेशा मधु टपकती रहती है। शास्त्रीजीका भी वहाँ व्याख्यान हुआ था। आप बड़े ही अच्छे वक्ता है। विशेषकर आप भारतीय दर्शनपर व्याख्यान देते रहते हैं। शास्त्रीजी अब प्रौढ़ावस्थासे ऊपरकी ओर बढ़ रहे हैं। बीसियों वर्षोंसे आप जापान, चीन और यूरोपमे रह रहे है। इस वक्त तो आपके परिपक्व ज्ञानसे देश-वासियोंको कितना लाभ होता, यदि आप जन्मभूमिमे आकर किसी कालेजमें अध्यापनका काम करते या दूसरी तरह सेवा करते। आपको कोई सन्तान नहीं है।

१६ सितम्बरको लन्दनसे ५ मील दूर डल्-विच शहरमे एक अंग्रेज दम्पतीके घर भोजनका निमन्त्रण था। शहर वस्तुतः वहाँ तक लगा चला गया है। यह दम्पती बड़े ही सुसंस्कृत हैं। दोनों ही लेखक है। और कोत के (Conte) मतके पक्षपाती हैं। कोतका मत बुद्धकी शिक्षासे बहुत मिलता है। इनकी लड़की लंकाके आनन्द कालेजके प्रिंसिपल श्री कुलरानको व्याही हैं। और स्वयं एक बौद्ध-कन्या कालेजके प्रिंसिपल है। पतिको

दर्शनका बड़ा शौक है। पत्नीको काव्य और कलामे बहुत अनुराग है। एक बड़ा अच्छा पुस्तकोंका संग्रह है। भारतके प्रति दोनोका बड़ा प्रेम है। तीन बजेके करीब हमे डलविच् चित्रशाला दिखानेको ले गये। इसकी स्थापना तीन सौ वर्ष पूर्व हुई थी। लन्दनकी राष्ट्रीय चित्रशालासे भी यह पुरानी है। प्रायः एक सहस्र सुन्दर तैलचित्र, इसमें संगृहीत है। बड़ा सुन्दर संग्रह है। धार्मिक और ऐतिहासिक दोनो ही प्रकारके भावपूर्ण चित्र हैं।

सितम्बरके अन्तसे जाड़ेका मौसिम आया मालूम होने लगा। हमारे आनन्दजी कभी-कभी अब कमरेकी गेसकी अंगीठीका व्यवहार करने लगे।

लन्दनमें सालके खास महीनेमें घड़ीको असली टाइम्से घटा-बढ़ा दिया जाता है। दो अक्तूबरको अबतक चले आते तीन बजेको दो बजे कर दिया गया; और, अब समय ग्रीनविच्के अनुसार हो गया। इस एक घंटाके इधर-उधरसे रोशनीके भेदमे राष्ट्रको कई लाखका लाभ होता है।

लन्दनमें बृटिश म्युजियमके अतिरिक्त एक और भी विशाल म्युजियम (संग्रहालय) है, जिसे केन्सिङ्टन म्युजियम कहते है। ५ अक्टूबरको हम दूसरी बार इस म्युजियमको देखने गये। यहाँके क्युरेटर केम्बल् महाशय स्नेह और सहानुभूतिकी साकार मूर्त्ति हैं। हमे मालूम था कि, भगवान् बुद्धके दो प्रधान शिष्य उपतिष्य सारिपुत्र (ब्राह्मण, जन्म नालन्दा, जि० पटना), कोलित मोग्गलानकी (ब्राह्मण, जन्म राजगृहके पास, जि० पटना)

सांचीके प्रसिद्ध स्तूपमें मिली अस्थियाँ यहाँ रखी हैं। हमारे जानेपर वह स्वयं अपने संग्रहको दिखलानेके लिए ले गये। ऊपर एक कॉचके बक्समे इक्कीस सौ वर्ष पुरानी वह पत्थरकी डिबिया रखी थी। उन्होंने बक्सको खोलकर पहले आयुष्मान् सारिपुत्रकी अस्थि-को—जो कि एक संगखारेकी शकलके मर्मरी पत्थरकी डिबियामे रखी थी (इस डिबियापर इक्कीस सौ वर्ष पुराने अक्षरोमे 'सारि-पुतसे'=सारिपुत्रका लिखा हुआ है)—मेरे हाथमे दिया। उस समय भगवान्के वह बचन मेरे कानोमे गूँजने लगे, जो उन्होंने उस महापुरुषके निर्वाणपर, (हाजीपुर जि० मुजफ्फरपुर, पुरान उक्काचल) के पास गंगाकी रेतीमे बैठे भिक्षुओ-को कहा था—'भिक्षुओ! मुझे यह (तुम्हारी) परिषद् सूनी-सी जान पड़ती है। सारिपुत्र मौद्गल्यायनके परिनिर्वाणके पूर्व यह सूनी नही मालूम होती थी। जिस दिशामे सारिपुत्र, मौद्गल्या-यन विचरते थे, उस दिशाको (मेरी) उपेक्षा नही होती थी। "भिक्षुओ! महान वृक्ष (का तना) बड़ा हो और उसकी सारमयी महती शाखाये टूट जायँ। इसी प्रकार भिक्षुओ मेरे लिये सारिपुत्र मौद्गल्यायनका परिनिर्वाण है।" यह शब्द तो उसी समय और उनके गुरुके मुखसे निकले थे। तबसे अब तक तो ढाई हजार वर्ष बीत गये, और, संसारमे बस उतनी ही अस्थियाँ उन महापुरुषोकी मौजूद है। इन बातोंके साथ जब छः हजार मीलपर मैं अपनेको अपनी ही जातिके उन महापुरुषोकी अस्थियोके सामने देखता था—मेरा अन्तर-बाहर एक विचित्र भाव-समुद्रसे

परिषिक्त हो रहा था। श्री केम्बल् भी वृद्ध हैं और बड़े ही सहृदय हैं। उन्हें यह भली प्रकार मालूम होता था कि, हमारे भीतर क्या हो रहा है। सारिपुत्र, मौद्गल्यायनके बाद उन्होंने उन मज्झिम स्थविरकी अस्थिको हमारे हाथपर रखा, जिन्हें अशोकराजके तत्त्वावधानमें एकत्रित पटनाकी परिषद्ने हिमालयमें धर्म-प्रचारक भेजा था। पहले सिंहलमें प्राप्त भारतीय इतिहासकी सामग्री उतनी प्रामाणिक नहीं समझी जाती थी; किन्तु सांची आदिमें मिली इन सामग्रियोंने उनकी प्रामाणिकताको बहुत बढ़ा दिया है। वहाँके बाद केम्बेल महाशयके सहकारी—जो कि तिब्बती भाषा भी जानते हैं; और, भगवान बुद्धके बड़े अनुरागी हैं—ने अपने तिब्बतीय चित्र-पटोंके संग्रहको दिखलाया। उन्हे मेरे तिब्बतीय चित्रसंग्रहोंका पता था। १० सितम्बरके 'डेली स्कीच' तथा लन्दनके कितने ही दूसरे दैनिक पत्रोंमें फोटोके साथ उन चित्रोंके बारेमें छप चुका था। एक-एक चित्रपट तथा दूसरी तिब्बती सामग्रीको, इन्होंने दिखलाया। लौटकर श्री केम्वल कार्यालयमें गये, तो वह हमें छोड़नेके लिये आये। उस समय मुझे एक विचित्र अनुभव हुआ। यहाँ एक भारत-सरकारमें फौज या राज-नीति विभागमें किसी ऊँचे पदपर प्रतिष्ठित एक अँग्रेज सज्जन भी थे। केम्बेल महाशयको हमारे प्रति सन्मान देख, उन्हे भी मज-बूरन हाथ मिलानेके लिये हाथ बढ़ाना पड़ा; किन्तु हाथकी गति और चेहरेके आकार-प्रकारसे मालूम होता था कि, यह सब अनिच्छायुक्त था। वस्तुतः भारतमें आकर लौटे अँग्रेजके अधिकांश

और इङ्गलैण्डके अँग्रेजोमे बड़ा फर्क है। मुझे पेरिसके एक सज्जनकी बात याद है—वह भारतमे आकर १८ माससे ज्यादा रहे थे। भारतमे रहते वक्त वह सदा भारतीयोंके साथ रहते थे। इस प्रकार सरकारी कर्मचारियोको उनपर सन्देह होने लगा। उन्होने अपना चर उनके पीछे लगा दिया। वह बतला रहे थे, मुझे यह मालूम हो जाता था। मद्रास पहुँचनेपर, जब मैंने खुफिया पुलिसके एक अफसरको अपने टोहमे आते देखा, तो मैंने उनसे कहा—मुझे मालूम है—तुम गुप्तचर हो; और, मेरे पीछे लगाये गये हो। फिर यह क्या जरूरत कि, हम लोग दूना खर्च करे। आवो तॉगा, टेक्सी आदि करनेमे हम दोनो शामिल हो जायँ। किराया इस प्रकार आधा ही आधा पड़ेगा। इस प्रकार वह गुप्तचर उनके साथ एक मददगार साथीकी तरह रहा। उसकी रिपोर्टों तक लिखनेमें हमारे दोस्त मदद कर दिया करते थे। खैर, मेरा मुख्य मतलब तो उनकी इस बातसे था। किसी प्रान्तके एक बड़े अफसरने एकबार उनसे पूछा—आप क्यो हिन्दुस्तानियोमे ही रहते हैं, और, अँग्रेजोसे नही मिलते ? उन्होने उत्तर दिया—मै यहॉ हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानियोको देखने आया हूँ, इसलिये मुझे ऐसा ही करना चाहिये। मुझे अँग्रेज जातिको देखना होगा, तो मै इङ्गलैण्ड जाऊँगा, और, वहॉ मेरे बहुत-से दोस्त भी है। अँग्रेजोके गुणोंको जाननेके लिये हिन्दुस्तानमे आकर मै भूल करूँगा। मेरे मित्रकी राय थी और उससे मै भी पूर्णतया सहमत हूँ कि, भारतमे आये अँग्रेजोसे अँग्रेज जातिका अन्याय

करना भारी अन्याय होगा। लेकिन इसका यह मतलब न समझिये कि, भारतमे आये सभी अँग्रेज उत्तम भावोंसे बिलकुल शून्य होते है। आइये यहाँ मै अपना ही दो अनुभव आपको सुनाऊँ।

(१) मैं अपने तिब्बतीय चित्रोंके संग्रहसे चालीस चित्र* अपने साथ यूरोप ले गया था। लन्दन और पेरिसमें उनकी प्रदर्शनी हुई; और, कलाविदोंने उनकी खूब तारीफ की। लन्दनमें चित्रोकी प्रदर्शनीकी बातको पढ़कर, चित्रोको देखनेके लिये एक सज्जन सपत्नीक आये। वह तिब्बतीय भाषा जानते थे और हिन्दुस्तानी भी। जिस प्रकार वह अहंकार-शून्य हो, सप्रेम हो बाते कर रहे थे, उससे मैंने निश्चय समझ लिया कि, वह पादरी होगे। भारत-सरकारके किसी भी फौजी या मुल्की अफसरसे अपनी पूर्व-धारणाके अनुसार, मै ऐसी आशा नहीं रखता था। हमारी कई बार आपसमे बातचीत होती रही; और, मै अपनी पूर्व धारणा-को बनाये हुए था। यद्यपि पादरियोंकी भाँति, मजहबी विचार-संकीर्णता न पा, मुझे कभी सन्देह भी होने लगता था। आखिरको मुझे जब उन्होंने अपना एक बड़ा-सा लेख—जो उन्होने (स्विनी काँगडा)के एक ग्यारहवीं शताब्दीके मन्दिरके सम्बन्धमें लिखा था, और, जो भारतके पुरातत्त्व-विभाग द्वारा प्रकाशित हुआ

* अब यह चित्र पटना म्युजियम में हैं।

था—दिया। उसमे मैने लेखकका नाम देखा—लेखक श्री H. ली शटलवर्थ एम० ए०, रिटायर्ड आई० सी० एस० (आजकल आप लन्दन विश्वविद्यालयमे भोट भाषाके अध्यापक है)। यह देखकर मुझे अपनेपर बड़ा अफसोस हुआ। सचमुच बुद्धने ठीक कहा है—मनुष्यको विभज्यवादी (अच्छे बुरेके विभाग करके निर्णय करनेवाला) होना चाहिये। पतिमे ही नही, देवी शटलवर्थमे भी मैने वही गुण देखे, जो कि आर्य-ललनामे होने चाहिये। एक दिन मै उनके यहाँ चाय पीने गया था। उस दिन उन्होने अपने कांगड़ा और लदाखके संग्रहको दिखलाया। उन सैकड़ो चित्रोको भी दिखलाया, जिन्हे उन्होने भारतमे उतारा था। कुल्लूमे रहते उन्हे, एक ८ इंच लम्बी, हाथी दाँतपर अवलोकितेश्वरकी मूर्ति मिली थी। उसे भी उन्होने मुझे दिखलाया। बारहवी-तेरहवीं शताब्दीकी कलाका वह अति सुन्दर नमूना है। अबकी बार लदाख आनेपर उनके परिचित आदमियोसे यह भी मालूम हुआ कि, जब शटलवर्थ महाशय कांगड़ामे असिस्टेंट कमिश्नर थे, तो दौरामे जाते वक्त दवाइयाँ अपने साथ रखते थे, और, रोगियोको बाँटते चलते थे। इसी जीवनको बोधिसत्त्व जीवन कहा गया है। श्री शटलवर्थ वह व्यक्ति है, जिनसे परिचय प्राप्त कर, मनुष्यको मेरी तरह, उनकी स्मृतिको एक बहुमूल्य कोषकी भाँति हृदयमे सुरक्षित रखना होगा।

(२) एक और देवी मेरे चित्रोकी प्रदर्शनी देखने आयी थी। उन्होने मुझसे कहा कि, मेरे पास भी तिब्बतीय चित्रों और

अन्य चीजोंका संग्रह है। मैंने जब संग्रहके मूलके बारेमें पूछा, तो मालूम हुआ कि, वह उन्हीं लेण्डन महाशयका संग्रह है, जो लार्ड कर्जनके द्वारा तिब्बतपर जो मुहिम् भेजी गयी थी, उसमें शायद टाइम्सके संवाददाताके रूपमे गये थे; और, पीछे ल्हासापर एक सुन्दर पुस्तक लिखी। नेपालपर भी नवीनतम और सर्वोत्तम पुस्तक उन्हींकी दो भागोमें छपी है। मैंने तुरन्त अपनी स्वीकृति दे दी। देवीने अपने साथी केप्टन्की ओर इशारा करके कहा कि, वह मोटर लेकर आ जायँगे। उन्होने यह भी बतलाया कि, केप्टन् एक साल भारतमें भी फौजमे रह चुके है। भारतमे रहनेकी बात सुनते ही मै चौकन्ना हो गया।

५ नवम्बरको केप्टन् महाशय मोटर लेकर आ गये। मै जाकर उनकी बगलमे बैठ गया। जाड़ेका दिन था; उन्होने कम्बलका आधा हिस्सा मेरे पैरोपर भी डाल दिया। मै गाल फुलाये चुपचाप चला। मै समझता था, यह भारतसे लौटा अँग्रेज सभी भारतीयोंको कुत्तोंकी तरह देखनेवाला होगा। मेरी मुख-मुद्रा कितनी देर तक इसी प्रकार बनी रही। कुछ मिनटोंके बाद उन्होने मुझे स्थानोंके नाम आदि बतलाने शुरू किये। यह जातीय कलाशाला है, यह अमुक स्थान है इत्यादि इत्यादि। इस तरह प्रेमपूर्वक स्थानोंको बतलाते हुए, उस युवक केप्टनको देखकर मुझे फिर अपने ऊपर अफसोस हुआ। मै उक्त देवीके मकानपर गया।

इग्लैण्डमें, और वही यूरोपमे भी है, जिससे अधिक घनिष्ठता आदमीकी हो जाती है, उसे आनुवंशिक नामको (जैसे हमारे यहाँ

तिवारी, सिंह आदि) छोड़ निजी नामसे बुलाया जाता है। मेरा और उस देवीका परिचय यद्यपि एक ही दिनका था, तो भी वह इतना काफी था कि, उसने मुझे राहुल कहकर बुलाया। चाय-पानके बाद उन्होंने संग्रह और मकानके बारेमे बतलाया—मिस्टर लेण्डन् मेरे स्नेही मित्र थे। वह इसी घरमे रहा करते थे। पूर्वमे बहुत समयतक रहनेके कारण वह बहुत ही एकान्तप्रेमी हो गये थे। जब कभी मै यहाँ आती थी, तो उन्हे पर्दा आदि गिराकर इसी अँधेरे कमरेमे अपने संग्रहके बीचमे बैठा पाती थी। पिछले समयमे वह सब काम छोड़ एकान्त सेवन करना चाहते थे, किन्तु परराष्ट्र विभाग उन्हें चैन नहीं देता था। इसी मकानमे उनका देहान्त हुआ। उस वक्त मै अमरीकामे थी। मुझे जब मालूम हुआ, तो अपने खानदानका पुराना मोतियोका हार बहुत सस्तेमे बेंचकर मैने इस मकान और संग्रहको खरीद लिया। मैंने एक सज्जनपर भरोसा करके उनके जरिये सब काम करवाया था। जब मैने यहाँ आकर देखा, तो कलाकी वस्तुओमे बहुत-सी सुन्दर चीजे, उन्होने उड़ा ली थीं। मैने भी चीजोको देखते वक्त इस बातकी सत्यताका पता पाया। संग्रहमे चित्रपट, मूर्त्तियाँ, पूजा-भाँड, तिब्बती और चीनी प्याले और दूसरे बर्तन आदि थे। वहाँ कार्ड साइजमें काले, मोटे, हाथके बने कागजपर सुनहली स्याहीसे लिखे बहुत ही सुन्दर एक सौसे ऊपर चित्र देखे। देवी समझती थी कि, यह खेलनेके ताश है। मैंने उनके मोलको बतलाया। और यह भी कहा कि आप इसे यहाँ किसी म्युजियम्

केन्सिङ्टन् म्युजियम्मे दे दे। चाहे दामसे या मुफ्त, क्योंकि ऐसी दुर्लभ चीजे किसी प्रामाणिक सार्वजनिक संस्थामे रहें, तो सुरक्षित रहती हैं। मैंने श्रीकेम्बेलको भी इन चित्रोंके बारेमें कह दिया। आशा है, वह आकर केन्सिङ्टन् म्युजियम्की शोभा बढ़ायेंगे। देवीने ऊपरका घर भी दिखलाया। सभी चीजोंसे सुरुचिकी झलक आती है। उन्होंने अपने लड़केका चित्र दिखला कर बतलाया कि, वह आजकल मिश्रमे फौजका अफसर है। लन्दनमें मुझे और भी देवियोंसे मिलनेका मौका मिला, और, उनकी मधुर स्मृति भी मेरे हृत्तलपर अंकित है, किन्तु इस देवीमे तो मुझे माताका-सा प्रेम दिखलायी पड़ा, यद्यपि मिलनेका मौका दो ही बार हुआ। बिना किसी भूमिकाके यह भाव पैदा हो जाना, शायद किसी चिरन्तन सम्बन्धके कारण हो। देवीने लेण्डन साहबके संग्रह किये चित्रपटोंमेंसे दो अच्छे चित्रपट दिये—एक चक्रसंवरका, जो कि नेपालका बना है; और, उसपर चौरासी सिद्धोमेसे भी कुछके चित्र अंकित हैं, नीचे नेवारी अक्षरमे समय आदि भी लिखा है, दूसरा षड्भुज महाकालका जो कि काले कपड़ेपर है; और, अपने ढंगका एक सुन्दर और दुर्लभ नमूना है। यह चित्र भी अब मेरे चित्रोंके साथ पटना म्युजियम्में हैं।

वहाँ रहते मेरे चित्तमे यह बराबर प्रश्न उठता रहा कि, क्या वजह है, भारत जानेवाले अँग्रेज क्यों उतने अच्छे नहीं होते, जितने कि, इग्लैण्डमे रहनेवाले। मुझे इसके निम्न कारण समझ आये—(१) भारतमे प्रायः उन्हीं खान्दानोंके आदमी अफसर

बनकर जाते हैं, जिनके घरमे पीढ़ियोंसे भारतीयोंको नीची दृष्टिसे देखनेकी परम्परा-सी बन गयी है। (२) नये और प्रतिभाशाली युवक भारतकी नौकरियोंकी ओर एक तो दृष्टि ही नहीं डालते; क्योंकि भारतमे आनेपर उनकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाकी पूर्त्तिकी गुंजाइश नही रहती; और, जो आते भी है, वह यदि तरक्की और सफलता चाहते है, तो अपनी क्लबों और मीटिंगोंमें भारतीय घृणाके प्रभावको अपने भीतर डालनेके लिये मजबूर हो जाते है अन्यथा कुछ ही दिनोमे या तो उन्हें इस्तेफा देकर चला जाना पड़ता है, अथवा उपेक्षित हो विना विशेष तरक्कीके जैसे-तैसे दिन गुजार लेना पड़ता है। (३) सुसंस्कृत निर्भय भारतीयोसे समानताके साथ दिल खोलकर मिलनेका उन्हे मौका नहीं मिलता। (४) भारतीयोंकी कुछ सामाजिक बुराइयाँ और विषमताये भी उनकी सुनी-सुनायी बातोंको दृढ़ कर देती हैं। इङ्गलैण्ड जानेका मुझे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि, अपने स्वतत्र भावोंको बिना बदले, ॲंग्रेज जातिके प्रति जो भ्रमात्मक भाव मेरे दिमागमे घुस गये थे, वह जाते रहे। हाँ, मै इतनेसे आशा नहीं कर सकता कि, उन भारतीयोके भाव भी बदल जायँगे; जिन्होने इङ्गलैण्डके ॲंग्रेजोंको नहीं देखा; और, जिनके लिये ॲंग्रेज जातिका वही रूप है, जो उन्हे भारतमें आये ॲंग्रेजोमें मिलता है। भारतीयोको इस बातमे मै बिलकुल निर्दोष नहीं कहता।

लन्दनमे एक बर्मी बौद्ध सज्जनका देहान्त हो गया था।

२३ सितम्बरको उनके समाधि करनेका दिन था। हम दोनो भिक्षु उसमें निमंत्रित किये गये थे। लन्दनमें मुर्दोंके जलानेका भी अब इन्तजाम है।

वहाँके तथा यूरोपके और भी कई स्थानोंके ईसाइयोंने यह मान लिया है कि, मुर्देको जला देनेपर खुदा मियाँको कयामतके दिन खड़ा करनेके लिए उसके शरीरके पमाणुओंको जमा-करनेमें दिक्कत नहीं होगी। खुदाकी तकलीफके खयालका बोझ अब मुसलमानोंके सिरपर ही रह गया है। वह समझते, यदि जला दिया, तो इस्राफीलके कयामतका धोंतू फूँकतें वक्त मुर्दे उठेगे कैसे ? अस्तु। लन्दनमें और दूसरे शहरोंमे भी मुर्दोंके जलाने-दफनाने आदिका काम कुछ कम्पनियाँ करती हैं, जिन्हें अण्डर टेकर (under taker) कहते है। मोटरे, पर्दे, कंधे लगानेवाले आदमियोके कपड़े आदि सभी काले होते है। आप फोनसे बुलाइये और कुछ मिनटोंमे सब सामानके साथ वह वहाँ पहुँच जाते है। हम लोग जब मकानपर पहुँचे, तो उन कृष्णवस्त्र-धारी पुरुषोने शवको उठाकर काली मोटरपर रखा और स्वयं भी उसीपर बैठ गये। उस मोटरके पीछे-पीछे हमारी मोटर भी चली। हम लोग शहरसे बाहर बहुत दूर टेम्सके किनारे पहुँचे। कब्रगाहके पास ही दाहन घर भी है। दाहन घरके हम भीतर तो देखने नहीं गये; किन्तु बतलाया कि, आग उसमे इतनी तेज होती है कि, मुर्देके जलते देर नही लगती; और, कुछ समय बाद राख मिल जाता है। कहाँ एक घर लाखों मुर्दोंको हजारों वर्ष

तक जलानेके लिए काफी, और, कहाँ हवा-पानीके गन्दा करने-वाले कब्रगाह हैं, जो बहुत-सी उपजाऊ जमीनको अब भी घेरे हुए हैं, और, घेरते ही जा रहे है। यूरोपके लिए समझदारोंको इसका फायदा क्यों न मालूम हो, जब कि सहस्राब्दियों पूर्व उनके भी आर्य पूर्वज जलाते ही थे। हमारे बौद्ध बन्धुके घरसे जलानेकी अनुमति नहीं आयी थी; इस लिए लोगोंने समाधिस्थ करना ही पसन्द किया। पीछे जलानेकी अनुमति आनेपर उसके लिए भी आसानी थी। कब्रगाहके फाटकपर कृष्णवस्त्रधारी पुरुषोने शवको अपने कंधेपर उठाया। कब्र खुदकर तैयार थी। हमारे सामने शव-पेटिकाको भूमिपर रख दिया गया। फिर अँग्रेज और प्राग्देशीय बौद्ध जनोने त्रिशरण और पंचशीलको भदन्त आनन्दके मुखसे ग्रहण किया। आनन्दजीने बुद्धके मुखसे निकली अमर गाथा—'अनिच्चावत संखाएँ' (सभी उत्पन्न हुई चीजे मरनेवाली हैं, या सभी बनी चीजे विगड़नेवाली है) को कह एक छोटा-सा उपदेश दिया। फिर वस्त्र आदिका दान दिया गया। अन्तमे एक टोटी लगे बर्तनसे दूसरे कटोरेको भरते हुए इस गाथाका पाठ हुआ—यथा वारिवहा पूरा परिपूरेन्ति सागरम्। एवमेवइतो दिन्नं येताने उपकप्पति' (जैसे बादल अपने पानीसे समुद्रको परिपूर्ण करते है, वैसे ही यहाँ दिया हुआ (=प्रेत जन्मान्तरमे प्राप्त) को मिलता है)।' फाटकपर रखे रजिस्टरपर हस्ताक्षर कर, दो बजे तक हम लौटकर विहारमे चले आये।

८

लन्दनमें साढ़े तीन मास (घ)

अछूतोंके सम्बन्धमें महामंत्रीके फैसलेके खिलाफ महात्माजीके उपवासकी खबर लन्दनके अखबारोंमे उल्कापातके तौरपर थी। उससे पहले उपवास टूट जानेके बाद भी विलायतके पत्र भारतीय सत्याग्रह आन्दोलनके सम्बन्धमे चुप्पीसे काम लेते रहे। वह समझते थे कि भारतके धर-पकड़, मारपीटकी खबरें छापनेमें वहाँके लोगोमें विरोधी-भाव उत्पन्न होते है; लेकिन उपवासकी बातको रोक नहीं सकते थे; क्योकि यह तो महापुरुषके जीवन-मरणका प्रश्न था। यह खबर पढ़कर चीनी विद्यार्थी मेरे पास आये। उन्हे यह नहीं समझ आता था कि, अछूत आदमी किसे कहते है ? मैं पहले साधारण तौरसे समझाना चाहता था; किन्तु देखा उनके पल्लेमें कुछ नहीं पड़ रहा है। क्योंकि भारतके बाहर यदि कोई ऐसी बीमारी हो तब न ? आखिर मैंने उपमासे काम लिये। बुद्धका कहना है, उपमासे समझ

रखनेवाले आदमी समझे जाते हैं। मैंने कहा, भारतमें अति-पुरातन कालमें काले रंगकी जाति रहती थी। फिर वहाँ एक गोरे रंगकी जाति आयी। गोरी जातिने काली जातिको हटाकर सभी आर्थिक लाभके व्यवसायोंको हथियाना शुरू किया और काली जातिको घृणाकी दृष्टिसे देखने लगी। उसने काली जातिको अपनी बस्तियोंसे बाहर रहनेको बाध्य किया। उनका अपने धार्मिक उत्सव आदिमें शामिल होना बन्द कर दिया। उनके साथ शादी-व्याह निषिद्ध कर दिया, जैसा कि आजकल अमेरिकाकी गोरी जाति ने वहाँकी काली जाति हब्शियोंके साथमें किया है। आज इस बातको आरम्भ हुए तीन चार हजार वर्ष बीत गये और अब यद्यपि कितनी गोरी जातिकी संतति कालोंसे भी काफी काली है, और कितनी ही काली जातिकी संतान गोरोंसे भी गोरी, तो भी वह पुरानी बात जिसने पीछे धर्मकी व्यवस्था भी अपने पक्षमें कर ली, अब भी उतनी जीवित है। यही अछूतपनकी समस्या है। घंटों मगज मार करके हमने यह समझाया तो और उन्होंने सिर भी हिला दिया, किन्तु तब भी भारतके सड़े दिमागकी धरोहर इस अछूतपनको अच्छी प्रकार वह समझ पाये होंगे, इसमें तो मुझे सन्देह ही रहा। २७ सितम्बरको महात्माजीके उपवासके तोड़नेकी खबर सुनकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई!

१५ अक्टूबरको तिब्बती चित्रोंकी प्रदर्शनीका उद्घाटन हुआ। इसी वक्त सर्व प्रथम मुझे श्रीक्रिस्मस हम्फरीके दर्शनोंका

मौका मिला। आप लन्दनके एक जजके पुत्र तथा स्वयं भी वैरिष्टर हैं। लन्दनकी बुद्धिष्ट लाजका (= बौद्धसभा) प्रधान ही नहीं; बल्कि उसकी आत्मा हैं। बुद्धिज्म-इन्-इङ्गलैंड मासिक पत्र इसी संस्थासे निकलता है। आप, श्रीमार्च उस पत्रके सम्पादक हैं। इङ्गलैंडमें बौद्धधर्मके प्रचारमें आपकी धर्मपत्नी तथा श्रीमती हम्फरी भी बड़ा उत्साह रखती है। बौद्धधर्मसे प्रेम होनेके नाते बुद्धकी जन्मभूमिसे प्रेम होना स्वाभाविक ही है। आज प्रदर्शनीका उद्घाटन आपने ही किया। श्रीहम्फरी और उनकी सभाने महाबोधि सभाके कामसे पहलेसे ही अपना प्रचार कार्य शुरू किया है। इस संस्थाने कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं। उसके बाद तो कई बार हम्फरी दम्पतीसे वार्तालापका मौका मिला। और तबसे हमारा सन्निकट बन्धुत्व स्थापित हो गया है।

यह कहनेकी अवश्यकता नही कि, चित्रोंके बारेमे फोटो सहित लेख लन्दन और बाहरके बहुतसे पत्रोंने लिखा। लन्दनमें समाचार पत्रोंको फोटो देनेवाली पृथक् कम्पनियाँ भी है। उसी प्रकार ग्राहकोंके बारेमे पत्रोंमे छपी बातोंको काटकर भेजनेके लिये भी कम्पनियाँ हैं। इनके यहाँ इसके लिये सैकड़ो लड़कियाँ नौकर है। बौद्धविहार भी उनका एक ग्राहक था, इसलिये कटिङ्ग आती रहती थी।

लंकासे तीन मासके रहनेकी बातको स्वीकार कर ही मैं लन्दन गया था। सितम्बरमे ही मैंने सभावालोंको लंका लिख दिया

कि, मैं लौटना चाहता हूँ, किन्तु उनके और अनागरिक धर्मपालके पत्रोंमे यही रहता था कि, अभी और रहे। मुझे अपने कामकी फिक्र थी, इस लिये मैंने लौटनेका निश्चय कर लिया था। तिब्बत-से बीस-बाईस खच्चर पुस्तके और चित्रपट जो मैं लाया था, वह अब तक लंकामे रखे थे। वहाँ भी मै देखता था कि, जरा-सी असावधानीमे कीड़े घुस जाते थे। अब हम इस चिन्तामें थे कि इन्हें कहाँ रखना ठीक होगा। मुझे विहारमें ही रखना अभीष्ट था। इसलिये यहींकी संस्थाओंकी ओर मेरी नजर गयी। जब तक मै अपने चित्रपटोंको यूरोप नहीं ले गया था, तब तक असलमें उनके मोलको भी मैं नहीं समझता था। वहाँके संग्रहालयोंके चित्रोंको जब देखा, और लोगोंकी सम्मतियोंको भी सुना, तब मुझे मालूम हो गया कि, इतना सुन्दर तिब्बती चित्रपटोंका संग्रह यूरोपमे भी नहीं है। तब मुझे और भी इनकी सुरक्षाकी चिन्ता हुई। मै और भदन्त आनन्द दोनो महीनोंके परामर्श करनेके बाद इस परिणामपर पहुँचे कि, पटना म्युजियमको छोड़कर कोई दूसरी संस्था नहीं है, जिसपर विश्वास किया जा सके कि, वह सुरक्षित रख सकेगी। हमारे सामने सरकारी और गैर सरकारीका प्रश्न था , किन्तु हमे वस्तुकी सुरक्षाके सामने अपने पक्षपातोंको ताकपर रख देना पड़ा। शर्त यही रखी गयी कि, यदि किसी समय नालंदामे संग्रहालय बने, तो इन्हे वहाँ भेज देना होगा ; और साहित्यिक कामके लिये उनके उपयोग करनेमें हमे स्वतंत्रता रहेगी। (इन्हीं शर्तोंपर पीछे प्रायः ७ टन अपने ग्रंथोंके संग्रहको

भी हमने पटना म्युजियम्को दे दिया)। १७ अक्टूबरको हम चित्रपटोंके सम्बन्धमे उक्त निर्णयपर पहुँचे थे। लेकिन म्युजियम् के प्रेसीडेन्ट श्रद्धेय जायसवालजीको पत्र २८ अक्टूबरको लिखा। पेरिस पहुँचनेपर, लन्दनसे अनुप्रेषित उनका स्वीकृतिका तार मुझे मिल गया।

मेरा इरादा यूरोपके कुछ और देशोंको भी देखनेका था। इस लिये पर-राष्ट्र कार्यालयको अपना पासपोर्ट भेजकर कुछ देशोंमे जानेकी स्वीकृति मॉगी। १६ अकटूबरको फ्रांस, बेल्जियम्, लुक्समबर्ग, स्वीटजरलैंड, इटली, हालैंड, स्पेन, पुर्तगाल, जर्मनी, आस्ट्रिया आदि देशोकी स्वीकृति लिखकर चली आयी।

१३ नवम्बरको कार्तिक पूर्णिमा थी, इसी दिन आर्य-सारिपुत्रका नालन्दामें देहान्त हुआ था। हमारी सलाह हुई कि, उस दिन आर्य-सारिपुत्रके अस्थिको मॅगवाकर, श्रद्धांजलि अर्पण की जाय। श्रीकेम्बेल मेरे चित्रोंको देखने एक दिन विहारमें आये थे, उस दिन उनसे मैंने इस बातकी सलाह की। उन्हें भी बात पसन्द आयी, कहा, आप ट्रस्टियोंको लिखे मैं भी कोशिश करूँगा। हमने पत्र लिखा। हमने कह दिया था कि, लन्दनमे केन-सिङ्गटन म्युजियमसे अधिक सुरक्षित स्थान उन अनर्घ अस्थियो के लिये नहीं है। हम चाहते है कि, अपने कर्मचारीसे सुरक्षित तौरपर कुछ घण्टोंके लिये भेजे। वह जब मामला पेश हुआ तो एक पेचीदगी पैदा हो गयी। केन-सिङ्गटन म्युजियममें एक काठके स्लीवका

टुकड़ा भी है, जिसे रोमन-कैथलिक कहते है कि, यह वही है जिसपर कि महात्मा ईसाको सूली दी गयी थी। सवाल हुआ कि, फिर वह लोग यही मांग पेश करेगे। अन्तमे यह निश्चय हुआ कि, म्युजियम के ही एक कमरेमे उनके इच्छानुसार इसे रखा जाय। कार्तिक पूर्णिमाको लन्दनके बहुतसे बौद्ध नर-नारि वहाँ पहुँचे। अपने एक भारतीय पूर्वजके सम्मानमे हम दोनोके अतिरिक्त कुछ और भारतीय भी पहुँचे थे, जिनमे श्री मुकुटविहारी दर युक्त प्रान्तमे डिप्टी कलेक्टर हैं और मेरे मित्र काशीवासी श्री मोतीचन्द भी थे। हाँ, श्री सटलवर्थ भी वहाँ पहुँचे थे। हम लोगोने वहाँ अपनी भक्ति-पुष्पाञ्जली भी अर्पण की।

यहाँ एक और सहृदय सज्जनका स्मरण कर देना है। इनसे कई बार वार्तालापका मुझे मौका लगा। आपका नाम श्रीमेक्स मण्डलक है। आप यहूदी जातिके एक तरुण दार्शनिक है। उनकी एक पुस्तक उस वक्त 'चेतनाके कृत्य और उसकी बनावट' प्रेसमें थी, और, मेरे लन्दन छोड़नेके कुछ ही दिनोमे प्रकाशित हो गयी। मुझे उन्होने एक प्रूफकापी प्रदान की। 'चेतना' पर इतनी सरलता और गम्भीरता पूर्ण विवेचन करना उनका अपना काम तो है ही साथ ही उन्होने अपना एक नया दर्शन उस पुस्तकके द्वारा संसारके सामने रखा है। अपनी विचार धाराके ऊपर बहनेकी बात कहते हुए बतलाया था कि, वह आक्सफोर्डके विद्यार्थी थे। उसी वक्त उन्हे एक भयंकर बीमारीने आ पकड़ा, जिसके कारण तीन साल तक वह चारपाईसे उठनेके

लायक न रहे। इन तीन वर्षों मे अपनी आन्तरिक अवस्थापर वह व्यापक विचार करने लगे। वह इस निष्कर्षपर पहुँचे कि, प्रकृतिके साथ प्रतिकूलता ही दुख है, और अनुकूलता ही सुख है। प्रकृति स्वयं ही विद्युत्से भी अधिक शीघ्रता प्रवर्तित हो रही है इत्यादि इत्यादि। पुस्तक बहुत बड़ी नही है और यद्यपि उन्होंने अपने सिद्धान्तकी पुष्टिमे आइन्स्टाइनके सापेक्षतावाद, भौतिक विज्ञानियोकी कितनी ही नवीनतम सिद्धान्तोंको पेश किया है, तो भी भाषा इतनी सरल है कि, समझनेमे दिक्कत नहीं होती। अपने दर्शन प्राप्त करलेनेके बाद, उन्हें पता लगा कि, उनका दर्शन बुद्धके दर्शनके समीपतम है। मैने उसे हिन्दीमे अनुवाद करनेकी इच्छा प्रकट की, और, उन्होने सहर्ष अनुमति भी दे दी; किन्तु अभी न मुझे उसके लिये समय मिला और न मैने किसी प्रकाशकको ही ढूंढा और पाया।

१ नवम्बरको इण्डिया हाउसके पुस्तकालयमें गये। यहाँ भी भारतीय पुस्तको और चित्रोका भारी संग्रह है। यह उसी डौनिङ स्ट्रीटमें है, जिसमें इङ्गलैड-सरकारके और कार्यालय हैं। यहाँसे एक साथ पाँच पुस्तके पढ़नेको मिल जाया करती हैं। मै भी वहाँसे पाँच पुस्तके साथ लाया।

१४ नवम्बरको पेरिसके लिये रवाना होना निश्चित हो चुका था, इसलिये लन्दनकी और कुछ जगहोको देख लेना था।

९ नवम्बरको श्रीएलिस मेरे साथ हुए। पहले ऋषिमार्क्सकी

समाधि देखने जाना था। टेक्सी करके (क्योंकि दयाने अपनी मोटर बेच डाली थी और नयी ला न सके थे) हम लोग हाई-गेटके उस कब्रस्तानकी ओर चले, जहाँ वह संसारका उद्धारक महान् तत्त्ववेत्ता आखिरी नींद भोग रहा है। जानेपर मालूम हुआ कि, वहाँ इस नामके दो कब्रिस्तान है, एक रोमन-कैथलिकोंके लिये और दूसरा दूसरोंके लिये। रोमन-कैथलिक कब्रिस्तानमे भला उस घोर नास्तिकको कहाँ जगह मिल सकती थी? हम लोग दूसरे कब्रिस्तानकी ओर गये। फाटकपर फूल बिक रहे थे। हम तो देवताके स्थानपर जा रहे थे, इसलिये श्री एलिससे कहा कि, फूल ले लीजिये। कब्रिस्तानके सिपाहीसे पूछा, एक तो उस त्राण-कर्ताके कब्रसे वाकिफ नही था, किन्तु दूसरेने बतलाया मै जानता हूँ। थोड़ी देरमे छोटी-छोटी (यानी गरीबोंकी) कब्रोंको पार कर हम उस कब्रके सामने पहुँच गये। गरीबोंके उद्धारके लिये गरीबोंके बीच ही सोना चाहिये, और, सो भी एक गरीब ही गड्ढे मे। आस-पासकी कब्रोंसे सिर्फ इतना ही फर्क है कि, सिरहाने किसीने कॉच जड़े गौखेमे कुछ नकली फूल और शायद लाल झण्डा रख दिया है। इसी चार हाथ लम्बी, दो हाथ चौड़ी जमीन के नीचे, जिसके ऊपरी भागमे सिर्फ गच की हुई एक चौकोर मेखला-मात्र है। कार्ल मार्क्स, उसकी स्त्री, उसका पौत्र और एक और सन्तान चार प्राणी लेटे हुए है। गरीबोंके हितके लिये अपने जीवनमे वह यातनाएँ सहता रहा, दर-बदर फिरता रहा, और, आज जब कि मनुष्य जातिके एक पंचमांशने जो उसको

अपना गुरु मान लिया है और बाकी जगहोंमें भी यदि उसकी दवाको समझा कर पूछा जाय, तो तीन चौथाई लोग उसीके होंगे—भी वह ऐसे गुमनाम स्थानमे उपेक्षित पड़ा है।

हाईगेटसे टेक्सीकर हम वेस्टेमिनिस्टर केथड्रलको गये। यह रोमन-कैथलिक चर्च है। रोमन-कैथलिक मूर्ति-पूजक होते है और उनके मन्दिरोमे मूर्ति, धूप, बत्ती, घंटा आदिका वैसा ही जोर है, जैसे हमारे यहाॅ मन्दिरोमे। इस मतके सभी पुरोहित अविवाहित भिक्षु होते हैं। पूजा-पाठ, टंट-घंटका भी बहुत जोर है। इसका परिणाम यह है कि, प्रोटेस्टेंट या सुधारवादी सम्प्रदायके गिर्जे, जहाँ खाली होते जा रहे है, वहाँ इनके गिर्जे अपेक्षाकृत अधिक भरे रहते है।

वेस्टमिनिस्टर कैथड्रलसे लौटकर हम वेस्टमिनिस्टर एबीमे आये। यह पार्लियामेट घरके पासमे है। इङ्गलैंडके महापुरुषोकी समाधियाॅ और मूर्तियाॅ आप यहाॅ इकट्ठा ही देख सकते है। किसी जगह राजा-रानियोंकी कब्रे है, तो किसी जगह सेनानायको की। कवियोके कोनेमे इस प्रकार अँग्रेजी साहित्यके अमरकवियो की पायॅगे।

वेस्टमिनिस्टर एबीके पास ही टेम्स-तटपर पार्लियामेट हाउस है। मकान पत्थरके है। लार्ड सभा और साधारण सभाकी बैठके यहीं अलग-अलग शालाओमें हुआ करती है।

५ नवम्बरसे पहले एक दिन हम शहरमे जा रहे थे कि, मुॅहको

लाल-पीला रंगे लड़के जमा हो गये। वह गाई फॉक्सके (Guy Fawkes) लिये पैसा मॉग रहे थे। कोई दो सौ वर्षसे ऊपर हुये, जब गाई फांक्स नामका एक पुरुष हुआ था। उसे पार्लिया-मेटकी कार्रवाईयोंसे अधिक असन्तोष हुआ। उसने अपने असन्तोषको इस प्रकार प्रकट करना चाहा कि—पार्लियामेट हाउसके तहखानेमे बारूद जमा कर दी। इस ताकमे था कि, जब सभासद् जमा हो कर सभा आरम्भ करे कि, उसी समय आग लगा दे। समयके कुछ ही समय पूर्व भेद खुल गया। गाईको प्राण-दण्ड हुआ। उसीकी स्मृतिमे आज भी लन्दनके लड़के चन्दासे गाईके पुतलोंको होलीकी तरह जलाते है।

५ नवम्बर लड़कोंकी इस होलीका दिन है।

१

आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय

केम्ब्रिजसे हो आनेके बाद शीघ्र ही आक्सफोर्ड देख आनेकी इच्छा थी; किन्तु आज-कल करते-करते हमारे लन्दनसे प्रस्थानकी बेला आ धमकी। चौदह नवम्बर (१९३२ ई०) को हमें लन्दनसे फ्रान्स और जर्मनीके लिये चल देना था। सलाह हुई कि १० नवम्बरको आक्सफोर्ड चलना चाहिये। फोन्सेका महाशय हमारे साथ चलनेके लिये तैयार हुए। भदन्त आनन्दने भी चलनेके लिये कहा था। किन्तु चलनेवाले दिनकी पहली रातको खूब कुहरेका जोर रहा। प्रातःकाल भी वह बिल्कुल गया नहीं था। आनन्दजीको ऐसे भी अभी बहुत दिनों तक लन्दनमें रहना था। फलतः वह नहीं जा सके। हम दोनों दस बजेसे पूर्व, रेलसे, आक्सफोर्डके लिये रवाना हुए। सर्दी खासी थी। किन्तु वह तभीतक सताती है, जबतक आप मकान या रेलके डब्बेके बाहर हैं।
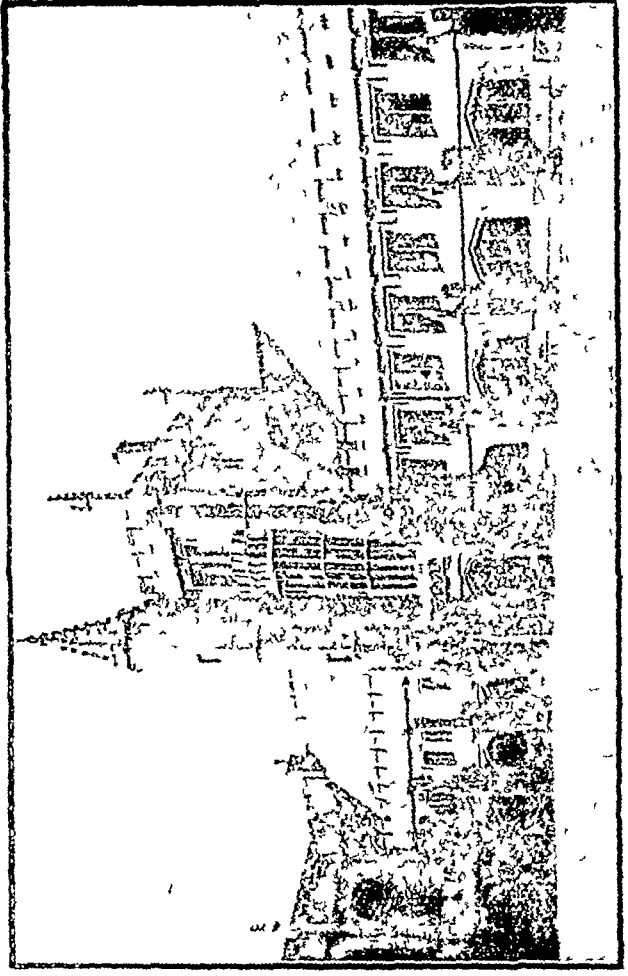
आक्सफोर्ड—मेर्टन् कालेज
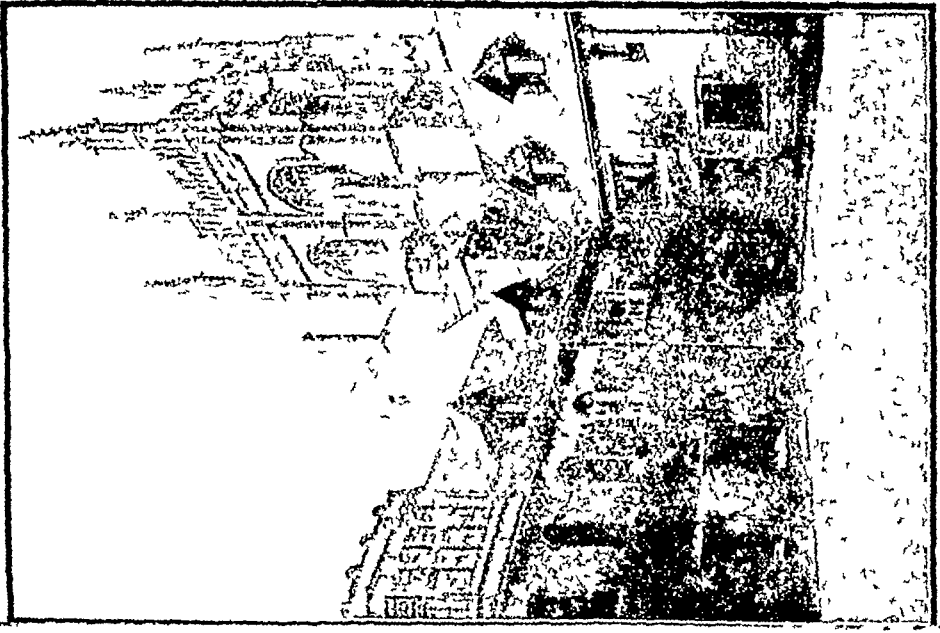
आक्सफोर्ड—मेड्-लिन् कालेज
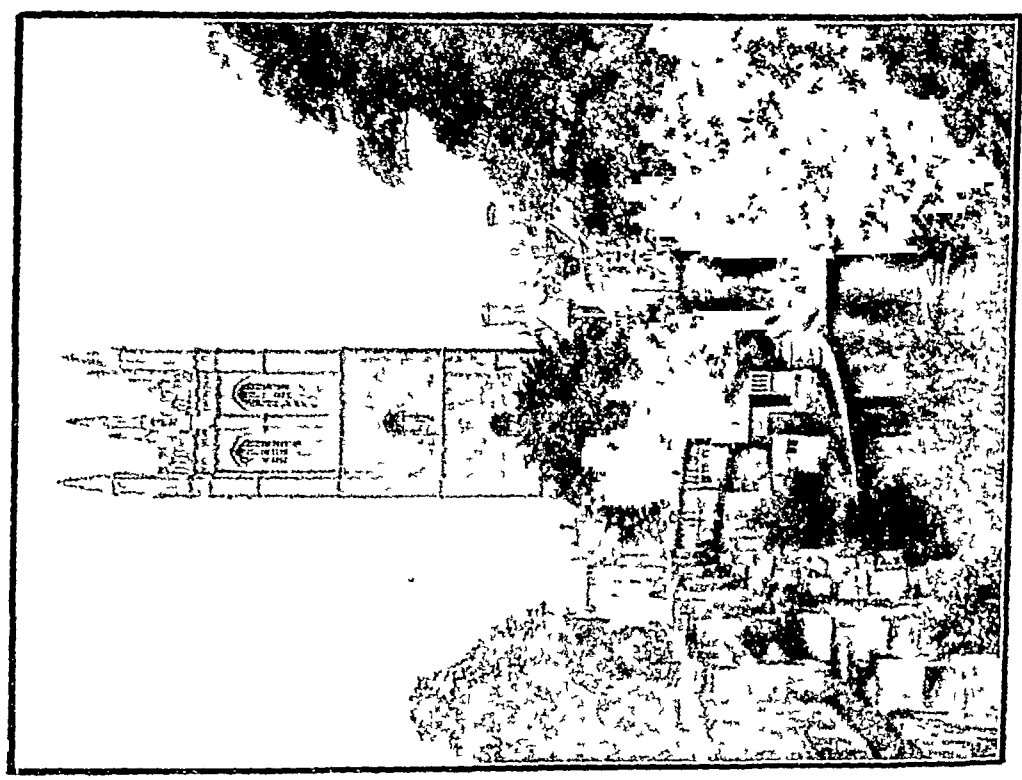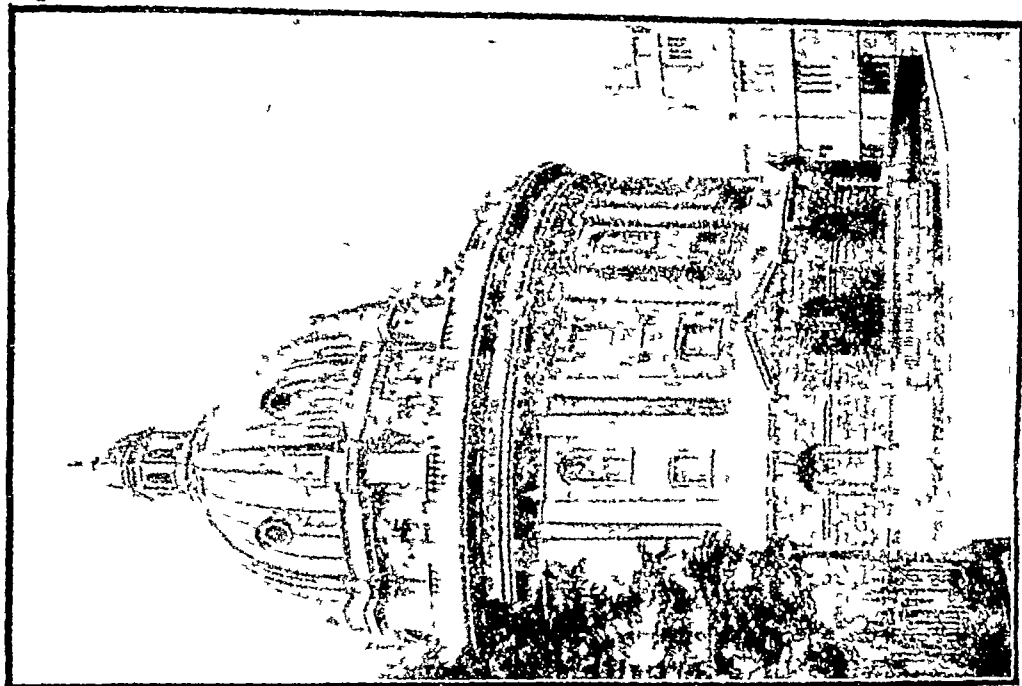
आज केम्ब्रिज-यात्रा जैसा बाहरके दृश्य देखनेका आनन्द नहीं रहा। कुहराके मारे पहले तो डर लगा कि, शायद देखनेका मजा ही किरकिरा हो जाय; किन्तु इन्द्र देवताने (जो बादलके स्वामी तो जरूर हैं, कुहरेको बादलमें शामिल कर लेनेपर यह भी उन्हीका दास होगा) मित्रताका हाथ फैलाया और धीरे-धीरे कुहरा हट गया। तो भी भीतरकी गर्मीके कारण काचकी खिड़कियाँ बार-बार भाफसे ढक जाती थी। बीच-बीचमें काच साफ करके जो देखा, तो केम्ब्रिज-यात्रा-सा ही पाया। वही विषमतल खेत, पत्तोंके बिना सूखकर काँटे हो गये-से वृक्ष, कृषकोंके सीधे-सादे मकान आदि, आदि।

ग्यारह बजेके बाद हम आक्सफोर्ड पहुँचे। द्रष्टव्य स्थानोंको देखनेसे पूर्व भोजनसे निवृत्त हो जानेकी सलाह हुई। हम एक भोजनशालामें चले गये और कुछ ही मिनटोंमें भोजनसे छुट्टी पा ली। स्टेशनसे विश्वविद्यालय कुछ दूरपर है; किन्तु मोटरबसें बराबर दौड़ती रहती है।

आक्सफोर्ड भी केम्ब्रिजकी भाँति पहले ईसाई भिक्षुओंका मठ था। मठमें पढ़ने-पढ़ानेका जो सिलसिला शुरू हुआ, वह धीरे-धीरे एक बड़ी शिक्षा-संस्थामें परिणत हो गया। १६ वीं शताब्दीके मध्यमें, जब इङ्गलैंडमें सुधार-वादकी तूती बोलने लगी, तब फिर यह मठोंके स्थानपर विद्यालय-मात्र बन गये तो भी वेष-भूषा, तथा दूसरी कितनी ही बातोंमे, अब भी दोनोंमें पुराने

मठोंकी छाप है। यद्यपि आक्सफोर्डके भिक्षु-मठकी स्थापना आठवीं शताब्दीके पूर्व हुई थी (चीनी परिव्राजक युन्-च्वाङ् (हुएनसांग) के नालन्दासे पढ़कर चले जानेके एक शताब्दी बाद); किन्तु उस वक्त इसका शिक्षण-संस्थाके तौरपर कोई महत्त्व न था, न उतना विस्तार ही था। आक्सफोर्डका सबसे पुराना मेर्टन् कालेज १२६४ ई०में स्थापित हुआ था। केम्ब्रिजके सबसे पुराने कालेज पीटर हाउस (स्था० १२८४ ई०) से बीस वर्ष पहले और हमारे नालन्दा, विक्रमशिलाके विध्वस्त होनेके ६४, ६५ वर्ष बाद); तो भी पिछले समयमें आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज अपनेको प्राचीनतर साबित करनेके लिये बड़ा विवाद करते रहे; जाली प्रमाणतक पेश करते रहे। अब भी दोनो विश्वविद्यालयोंमें कुछ होड़ है; किन्तु वैसी कड़वी नहीं।

आक्सफोर्डके भिन्न-भिन्न कालेजोका स्थापना-काल इस प्रकार है—

मेर्टन् कालेज	१२६४ ई०
लिंकन् कालेज	१२४७
बेलियोल् कालेज	१२६०-६६
यूनिवर्सिटी कालेज	१२८०
एक्सेटर कालेज	१३१४
ओरियेल कालेज	१३२४
न्यू कालेज	१३७९

आल-सोल्स-कालेज	१४३७
मौड्लिन् कालेज	१४४८
ब्रीसनोज कालेज	१५०६
कोर्पस् क्रिस्टी कालेज	१५१६
क्राइस्ट चर्च कालेज	१५२५
ट्रिनिटी कालेज	१५५५
सेंट जान्स कालेज	१५५५
जीसस कालेज	१५७१
वाढम् कालेज	१६१०
पेम् ब्रोक कालेज	१६२४
वर्सेस्टर कालेज	१७१०
केवल कालेज	१८४९
हार्टफोर्ड कालेज	१८७४
मेन्स फील्ड कालेज १८८६-९	विश्वविद्यालयके अंग नही
मंचेस्टर कालेज १८९१-३	

स्त्रियोंके कालेज—

लेडी मार्ग्रेट हाल	१८७८	१९२० ई० से विश्वविद्यालयके अन्तर्गत
समर बिल कालेज	१८७९	
सेंट ल्यूस कालेज	१८८६	
सेंट हिल्दास कालेज	१८९३	

अब आइये, एक तरफसे हम इन कालेजोंकी सैर करे। क्राइस्ट चर्च कालेज (स्था० १५२५ ई०) से शुरू करनेमें सुभीता

है। हमने चाहा कि, किसी प्रदर्शक (Guide) को ले लें; लेकिन मालूम हुआ कि पेशेवर प्रदर्शकोंको कालेजोंने मनाही कर दी है। किन्हीं-किन्हीं जगहोंमें कालेजोंने अपने प्रदर्शक रख छोड़े हैं। यहाँ हमें एक प्रदर्शक मिल गया। उसने कालेजके तृणाच्छादित स्वच्छ प्रशस्त प्रांगणमे खड़े होकर बतलाना शुरू किया—"देखिये महाशय ! यह कालेज १५२५ ई० मे स्थापित हुआ था। द्वारके गोपुरका नकशा देनेवाले प्रसिद्ध वास्तुशास्त्री सर क्रिस्टोफर रेन् थे, जिन्होंने आक्सफोर्डकी कितनी ही तथा लंदनकी भी बहुत-सी इमारतोंके नकशे तैयार किये थे। गोपुरको 'टामटावर' कहा जाता है। इसके ऊपर प्रायः २१० मनका घंटा है, जिसे 'ग्रेट-टाम्' कहा जाता है। यह इङ्गलैंडके सबसे बड़े घंटोंमें चौथे नम्बरका है। हर रातको नौ बजकर पाँच मिनटपर, मूल स्थापकोंकी स्मृतिमें यह १०१ बार बजा करता है। आइये चलें, अब हम यहाँकी भोजन शालाको दिखलावें।"

पूर्व-दक्षिणके कोनेमें सीढ़ीसे हम ऊपर चढ़े। द्वार खोलकर वह हमें भीतर ले गया। यह भोजनशाला क्या है, एक सुन्दर विशाल भवन है, जिसमें ऊपरकी ओर दीवारोंमें, चारों ओर कालेजके पुराने अध्यापकों और विद्यार्थियोंके सुन्दर-सुन्दर चित्र टँगे हुए हैं। इन चित्रोंका संग्रह १५२९ ई०से होने लगा था—अकबरके सिंहासनारूढ़ होनेसे भी पूर्व। नीचे, फर्शपर, मेज और कुर्सियाँ लगी हुई हैं। मेजपर हाथ रखकर उसने बतलाया, यह तीन सौ वर्षका पुराना है। एक जगह एक भाषण-फलक या

रोस्ट्रम् था। उसे दिखाते हुए कहा, दो सौ वर्ष पहले अमुक राजाने इसे प्रदान किया था। चित्रोंके बारेमे भी उसने इसी प्रकार बतलाया। बगलके प्रांगणके दक्षिण ओर पुस्तकालय और चित्र-शाला है। क्राइस्ट चर्च कालेज आक्सफोर्डका सबसे बड़ा और अति प्रसिद्ध कालेज है। इसे यूरोपकी अद्‌भुत शिक्षण और धार्मिक संस्था कहा गया है। लार्ड केनिग, पील, वेलेसली, डलहौसी जैसे शासको और सैनिकोंको इसने पैदा किया। इङ्गलैंडके जो प्रसिद्ध तीन महामन्त्री (ग्लेड्-स्टन्, सालिसबरी और रोज-बरी) जो लगातार एक दूसरेके बाद हुए, उन्हें भी प्रदान करनेका सौभाग्य इसी कालेजको है। महात्मा गान्धीके गुरुकल्प जान रस्किन भी यहींके विद्यार्थी थे। सम्राट् सप्तम एडवर्ड और विलायतके लार्डों-की एक बड़ी तादाद भी यहींकी है।

पासमे ही क्राइस्ट चर्चका केथड्रल् (गिरजा) है। यह १५२४ ई० मे बना था। आक्सफोर्डके प्रधान पुरोहितका (=विषप) यह मुख्य गिरजा है। सुधार-वादके पूर्व जब प्राचीन पथका जोर था, तब भी यह प्रधान भिक्षुओका पीठस्थान था। इसके एक कोनेमे उस पुराने मन्दिरका भाग भी सम्मिलित है, जिसे राजा एथरेल्ड द्वितीयने १००४ ई० मे जीर्णोद्‌धृत करना शुरू किया था। आठवीं शताब्दीमे सेट फ्राईड स्वाइडने इसी स्थानपर एक भिक्षुणी-विहार बनवाया था। केथड्रलके जॅगलोके काचोमे सुन्दर चित्र बने हुए है। इस भव्य गिरजेमे काफी दर्शनीय चीजे है।

पेम्-ब्रोक् कालेज (१६२४ ई०)। फाटकसे बाहर निकलकर दक्षिण तरफ थोड़ी दूर जा, फिर पश्चिम ओर थोड़ा चलकर पेम्ब्रोक् कालेज है। अँग्रेजी साहित्यके प्रकाण्ड पण्डित और कोषकार डाक्टर जान्सन १७२८ ई०मे इसीके विद्यार्थी थे। इसके पूर्व इस स्थानको ब्राडग्रेटस हाल' कहा जाता था। जनमूलक शासनके भारी पक्षपाती जान पाइम् इसी हालके विद्यार्थी थे।

केम्ब्रिजकी तरह यहाँ भी एक कार्पस क्रिस्टी कालेज है। इसकी स्थापना १५१६ ई०मे विन्चेस्टरके प्रधान पुरोहितने की थी। इसके आँगनमे १५८१ ई०से स्थापित एक धूपघड़ी है। पूर्वके जमानेमें इसकी बड़ी आवश्यकता थी। युन्-च्वाङ्ने नालन्दाके बारेमें लिखा है कि, नालन्दामें जलघड़ी इस्तेमाल की जाती थी, और, घड़ी-घड़ीपर घंटा बजाया जाता था। यह जलघड़ी लम्बे घड़ेमे एक खास परिमाणका सुराख बना कर उसे बड़े बर्तन या हौजमे भरे पानीमें रखकर प्रयुक्त होती थी। जब पानी भरते-भरते घड़ा डूब जाता था, तब उसे एक घड़ी समझा जाता था। आजकल यांत्रिक घड़ीके लिये भी घड़ी शब्द हमने उस जलघड़ीसे उधार लिया है। कालको ठीक करनेके लिये धूपघड़ी भी इस्तेमाल होती थी; किन्तु धूपघड़ी रातको और बादल रहने पर बेकार होती है। इङ्गलैडमे तो कुहरे और बादलकी भारी मार है। कभी ही कभी यहाँ सूर्यदेवके दर्शन होते हैं। ऐसी हालतमें यह धूपघड़ी उतनी सहायक तो नहीं होती रही होगी। अन्य कालेजोंकी भाँति इसमें भी एक छोटा गिरजाघर है। यद्यपि आज-

आक्सफोर्ड—बेलियोल् कालेज
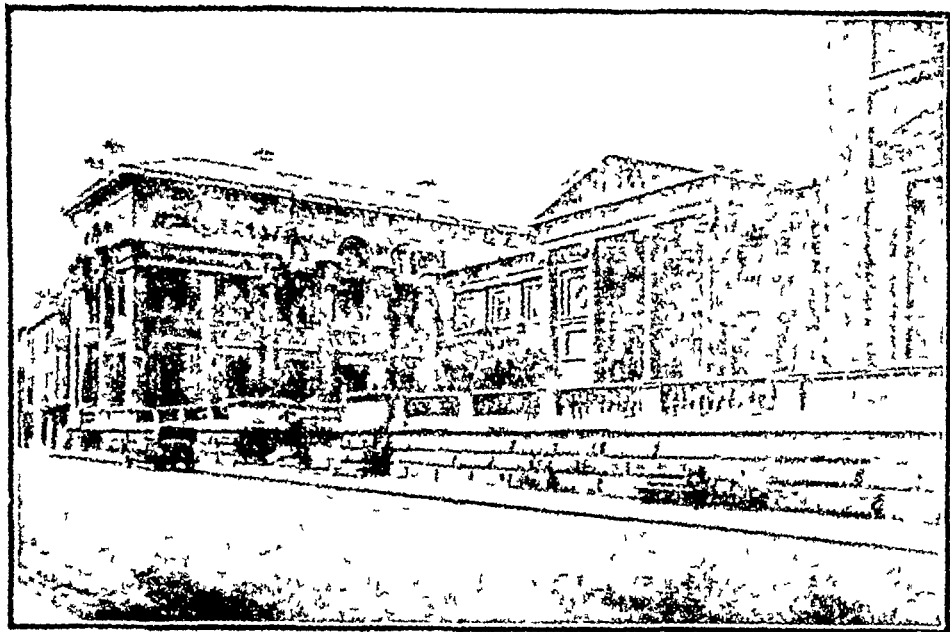
आक्सफोर्ड—अश् मोलियन संग्रहालय
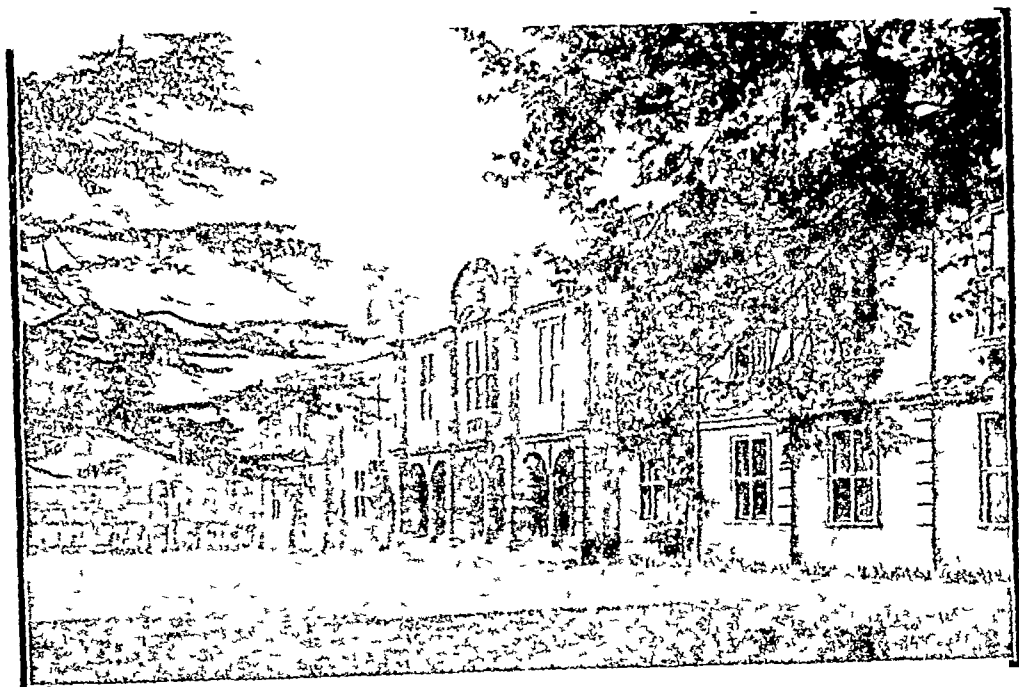
आक्सफोर्ड—समरविल् (स्त्री) कालेज

कलके जमानेमें बहुत कम ही लड़के खुदाकी भेंड़े बननेके लिये तैयार हैं।

यहाँसे हम आक्सफोर्डके सबसे पुराने मेर्टन् कालेजमे पहुँचे। वैसे दो एक और कालेज इससे पहलेके है, किन्तु उनका आरम्भ कालेजके तौरपर प्रथम नही हुआ था। मेर्टन् कालेज सर्वप्रथम यहाँ कालेजके तौरपर १२६४ई०मे स्थापित हुआ। इसकी शाला, पुस्तकालय और गिरजा बहुत दर्शनीय चीजे है। इसके छोटे दरवाजो और छतोवाले घरोंसे खुद भी इसकी प्राचीनताका अनुमान कर सकते हैं। गिरजाके जंगलोमे आज भी कितने ही पुराने समयके चित्रित काच आपको दिखायी पड़ेगे। प्रथम प्रांगणको पार करनेपर एक दूसरी अँगनाई मिलती है, जिसे 'मोब-क्वाट' (१३८०) कहते है। यहीं पुस्तकालय है। इसमे उस पुरातन पुस्तकालयकी भी बहुत-सी पुस्तके और पुस्तकालयके सामान है। इङ्गलैंडमे यह अपनी तरहका अद्वितीय पुस्तकागार है। इस पुस्तकालयको चि-चेस्टरके प्रधान पुरोहित विलियम् रीडने १३४९ ई०मे, बनवाया था। लार्ड डाल्फ चर्चिल आदि कितने ही इङ्गलैंडके महान् राजनीतिज्ञ और साहित्यसेवी इस कालेजसे सम्बन्ध रखनेवाले थे।

ओरियल कालेज। मेर्टन् कालेजसे लगा ही, उत्तर ओर, ओरियल कालेज है। इसका मुख्य द्वार औरोसे बिल्कुल ही विचित्र है। द्वारके ऊपर कुमारी मरियमके अतिरिक्त आपको तृतीय एडवर्ड

और प्रथम चार्लसकी मूर्तियाँ दिखायी पड़ेगी। यद्यपि कालेजकी नींव १३१४ ई०मे पड़ी थी; किन्तु यह फाटकवाला भाग सतरहवीं सदीके प्रथमार्द्धमे बना था। सोलहवीं सदीके पूर्वकी बहुत कम इमारतें यहाँ मौजूद हैं। स्वर्गीय लार्ड वर्कन् हेड जैसे कानूनदाँ और सेसिल रोडस् जैसे व्यवसायीको इसने पैदा किया। रोडस्ने इस कालेजको एक लाख गिन्नियाँ—आजकलके हिसाबसे बीस लाख रुपये दान किये।

ओरियलसे सटा ही हुआ, उत्तर तरफ यूनिवर्सिटी कालेज है। यह आक्सफोर्डके सबसे पुरातन कालेजोमें दूसरा है। किन्हीं-किन्हीका कहना है कि, इसीसे आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयकी नींव पड़ी थी। कवि शेली इसका विद्यार्थी था। उसने "अनीश्वरवाद-की आवश्यकता" (The Necessity of Atheism) पुस्तक प्रकाशित की। कालेजके ईश्वरभक्त क्योंकर सहन करने लगे? उन्होंने उस नास्तिक छोकड़ेको अपने कालेजसे निकाल दिया। लेकिन पीछेके लोग ऐसे कपूत हुए कि, उन्होने उस नास्तिककी यादगारमे शेली स्मारक बनवाया। इस विषयमें नालन्दा अच्छा था, जिसने धर्मकीर्त्ति, चन्द्रकीर्ति जैसे खुदा और बाइबिल (वेद) के घोर विरोधियोंको भी पहले ही से अपने शिरका मुकुट बनाया। हाँ, आजकी भाँति उस वक्त भी आक्सफोर्डमें मद्यपान जहाँ गुनाह नहीं समझा जाता था, वहाँ नालन्दाने इस गुनाहको अक्षन्तव्य समझकर महाकवि सरहको आठवीं शताब्दीमे निकाल दिया था।

आक्सफोर्डकी प्रधान सड़क हाई स्ट्रीटसे थोड़ा पूर्व चलनेपर एकजामिनेशन् स्कूल (परीक्षा-विद्यालय) है। यह कोई उतनी पुरानी संस्था नहीं है। जव हम इससे निकलकर शेरवेल नदीकी ओर जा रहे थे, तव मध्यान्होतर भोजनका समय था। विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियोंका प्रवाह वड़े वेगसे अपने-अपने भोजन-स्थान-की ओर जा रहा था। उनमें कुछ अपनी साइकिलो और मोटर साइकिलोंपर जा रहे थे; और, कुछ पगडंडीसे पैदल। हम इस आँधीके निकल जानेके खयालसे वनस्पति-उद्यानके सामने थोड़ी देरके लिये रुक गये। यह वनस्पति-उद्यान भी दर्शनीय वस्तु है। यह इङ्गलैंडका प्राचीनतम वनस्पति-उद्यान १६२१ ई०मे, अर्थात् जिस वक्त भारतमे जहांगीर राज्य कर रहे थे, स्थापित हुआ था।

रास्ता जरा साफ होनेपर हमने सड़कसे पार किया और, फिर, मेडलिन् कालेज (magdalen College)मे प्रविष्ट हुए। इसका उत्तुङ्ग घंटाघर वहुत दूरसे दिखायी पड़ता है। आक्सफोर्डके कालेजोमे यह सुन्दरतम समझा जाता है। यह सवसे ज्यादा धनी भी है। इतिहासकार गिवन् इसीके विद्यार्थी थे। इङ्गलैंडके वर्त-मान युवराज भी इसीके विद्यार्थी रहे है। यहॉका पुस्तकालय सुनहरे, हस्त लिखित तथा पुराने छपे ग्रन्थोके लिये प्रसिद्ध है।

हमें सवसे प्रवल इच्छा थी, आक्सफोर्डके विश्वविख्यात वोडलियन पुस्तकालय देखने की। इसलिये क्वीन्स कालेज और आल-सोल्स कालेजको देखते हम उधरकी ओर गये। हॉ, यह

कहना भूल गये कि, क्राइस्ट चर्चसे निकलते ही हमारे पास एक गाइड आया। शायद एक या दो जगह उसे कालेजवालोंने भीतर नहीं जाने दिया। बाकी वह सब जगह हमे ले गया। पुस्तकालय-के पहले हमे एक गोल इमारत मिली, इसे केमरा या रेडक्लिफ-केमरा कहते हैं। डाक्टर रेड्क्लिफने १७३७-४६ में इसे पुस्तका-लयके लिये वनवाया था। आजकल यह बोडलियन लाइब्रेरीका वाचनागार है। इसमे मेम्वर ही पढ़नेके लिये जा सकते है, तो भी एक किनारेसे इसे देखा जा सकता है। देखनेके बाद हम छत-पर चले गये। छतके चारो ओर फिरनेका रास्ता है। वहाँसे आक्सफोर्ड शहरका दृश्य बड़ा ही सुन्दर मालूम होता है।

अब हम उतरकर वोड्लियन् लाइब्रेरीमें गये, जो पास ही मे, उत्तर तरफ, है। वाहरसे देखनेमें नहीं मालूम होता कि, यह वही विश्वविख्यात पुस्तकागार है। पुराने मकानोंके ऐतिहासिक महत्त्व-की रक्षाके लिये अधिकारियोंने भरसक कोई परिवर्तन नही किया है। वैसे जगहे सभी बहुत ही साफ हैं। सीढ़ीसे ऊपर चढ़कर पहले हम उस कमरेमे गये, जहाॅ पुराने ग्रंथकारो और प्रतिष्ठित पुरुषोंके हस्तलेख, कितने ही हस्तलिखित ग्रंथ तथा चित्र प्रदर्शित किये गये थे। हस्तलेखोमें एक सम्राट् पंचम जार्जके हाथका भी है। इसे उन्होने ५ या ६ वर्षकी अवस्थामे लिखा था। पुराने ग्रन्थकारोंके हस्तलेखोंको देखकर हमारे मनमे खयाल उठने लगा कि, हम हिन्दीभाषा-भाषियोंको अभी कितना आगे चलना है! हमारे यहाँ हिन्दू विश्वविद्यालय, नागरीप्रचारिणी सभा जैसी

आक्सफोर्ड—शहर
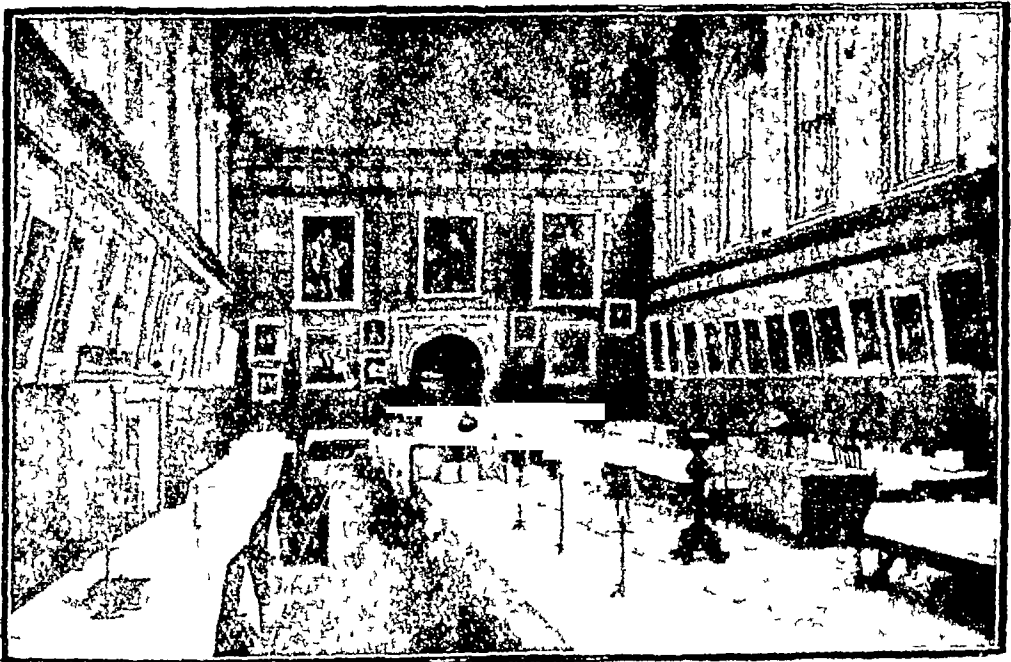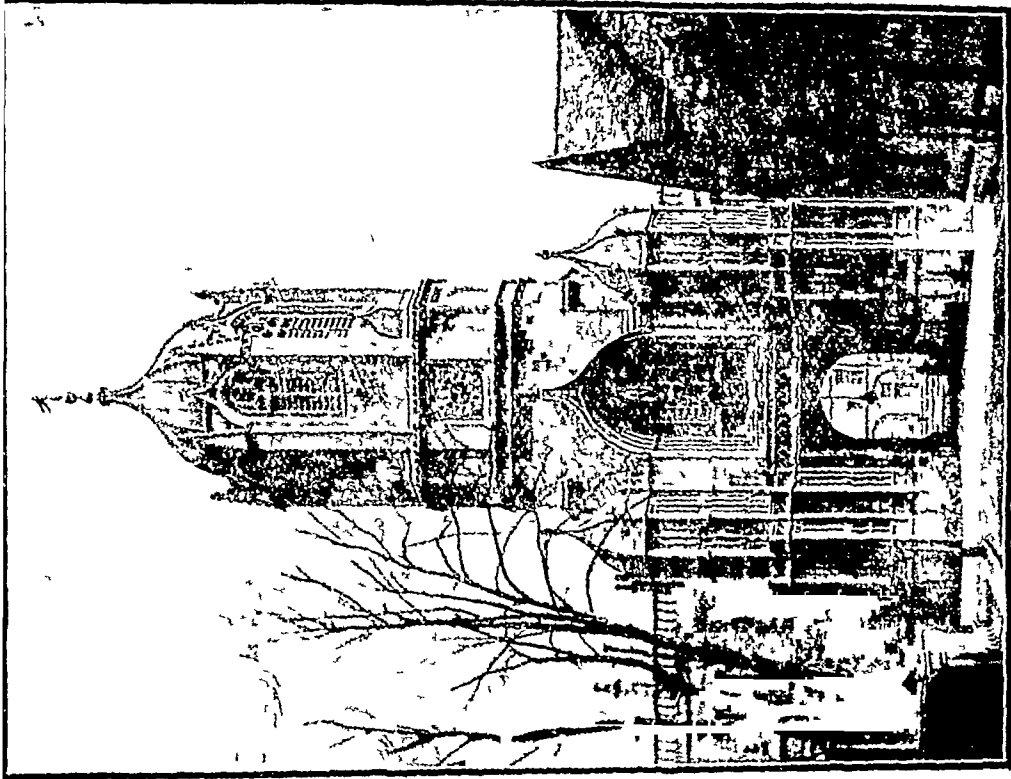
संस्थाओंको यह काम अपने हाथमे लेना चाहिये। यदि बहुत पुराने नहीं, तो उन्नीसवी सदीके उत्तरार्द्धके भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद, स्वामी दयानन्दसे लेकर पण्डित बालकृष्ण भट्ट, द्विवेदीजी, पं० पद्मसिंह शर्मा आदि सैकड़ों दिवंगत और वर्तमान हिन्दी-साहित्यसेवियोंके हस्तलेख तो जमा किये जा सकते हैं। राजनीतिक और धार्मिक नेताओंके भी हस्तलेख इसमे सम्मिलित किये जा सकते है। याद रहे, समकालीन या अचिरपूर्वकालीन पुरुषोंके हस्तलेखोको संग्रह करना सुलभ है। पीछे वह दुष्प्राप्य हो जाते हैं। कोशिश करनेपर तीन-चार सौ वर्षके पुराने महापुरुषोंके भी कितने ही हस्तलेख, यदि मूल प्रतिके रूपमें नहीं, तो फोटोके रूपमे प्राप्त हो सकते हैं।

उस कमरेसे निकलकर हम संस्कृत-विभागमे गये। पुस्तकाध्यक्ष महाशयने बड़ा ही सौजन्य प्रदर्शित किया। मैं संस्कृतके कुछ विशेष हस्तलिखित ग्रन्थोको देखना चाहता था, उन्हे उन्होंने बड़ी तत्परतासे खोजकर दिखलाया। नेपालके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री स्वर्गीय महाराज चन्द्र शमशेरने कितने ही हस्तलिखित ग्रन्थ इस पुस्तकालयको दिये थे। मैं यह देखना चाहता था कि, उनमें कुछ बौद्ध-ग्रन्थ है या नहीं। अभी उन पुस्तकोका नाम, छपे सूचीपत्रपर नहीं आया था। पुस्तकाध्यक्षने अपने कामके लिये बनाये लिखित सूचीपत्रको ही नहीं दिया, बल्कि कुछ पुस्तकोको खोजनेमें भी प्रसन्नता-पूर्वक पौन घंटेका समय लगा दिया। मैंने इस तकलीफके लिये जब उनसे क्षमा माँगी, तब उन्होंने कहा—"कोई बात नहीं,

आप इतनी दूरसे आये हैं; और, मेरा तो यह कर्त्तव्य है।"
भारतीय पुस्तकालयोंमें विशेष परिचय बिना बहुत कम लोग इतना कष्ट उठानेके लिये तैयार होंगे। पुस्तकोंकी रक्षाके लिये जैसा प्रबन्ध किया गया है, उसे देखकर चित्त प्रसन्न हो गया। जरा-जरा सी चिटको बड़े ही यत्नसे, और सुरक्षित आवरणके साथ, रखा गया है। वहाँ और ब्रिटिश म्युजियममें पुस्तकोंकी रक्षाके प्रबन्धको देखकर पहले से मुझे बड़ा ही आदर-भाव हो गया था। इधर एक ऐसी घटना मुझे मालूम हुई, जिसे उन महानुभावोंके लिये यहाँ उद्धृत करता हूँ, जो कहा करते है कि, चाहे कुछ भी हो, देशकी प्राचीन पुस्तके और दूसरी वस्तुएँ बाहर नहीं जाने देनी चाहिये।

कोई दो वर्ष हुए, जुलाई १९३१ ई०मे काश्मीर राज्यके गिलगित स्थानमें छठी-सातवीं शताब्दियोंके हस्तलिखित बौद्ध संस्कृत-ग्रंथोका एक भरा सन्दूक किसी पुराने स्तूपसे निकल आया। पता लगनेपर रियासतके वजीरवजारत या कमिश्नरने गाँववालोंके हाथसे उन पुस्तकोंको अपने यहाँ मँगवा लिया। स्मरण रखिये, १३, १४ सौ वर्ष पुरानी होनेसे वैसे ही ये पुस्तकें अनर्घ रत्न हो गयी थीं, दूसरे उनसे कुछ ऐसी पुस्तकें थीं, जिनका अब तिब्बती और चीनी भाषाओंमें अनुवाद-मात्र मिलता है। कुछका तो अनुवाद या संस्कृत मूल, कुछ नहीं मिलता। अच्छा, उन पुस्तकोंके साथ हमारे देशवासियोंने क्या सलूक किया? वह पुस्तके वजीरवजारतके आफिसमें और कागजोंकी तरह रख दी गयीं;

और, पुराने आफिशियल ढंगसे लिखा-पढ़ी शुरू हुई। श्रीनगरके अधिकारीके लिखनेपर उनमेंसे भोजपत्रपर लिखी कितनी ही पुस्तकें श्रीनगर भेज दी गयीं। बाकी दो साल बाद भी वहीं रखी है। और, रखी कैसे है? न उनकी कोई लिस्ट है, न कोई प्रबन्ध। यार-दोस्तोंमें उनके पन्ने, प्रसादीके तौरपर, बॉटे गये हैं। इस प्रसादीमेंसे जो कुछ पर्चे एक दो यूरोपीय विद्वानोंके हाथमें आये, वह तो सुरक्षित रखे ही नहीं गये, बल्कि उनमेंसे कितने ही छाप भी दिये गये। लेकिन जो पर्चे तवरुकके तौरपर उनके मोलसे अनभिज्ञ पुरुषोंको दिये गये, अब क्या उनके मिलनेकी कोई आशा हो सकती है? श्रीनगरके पत्रोंको मैंने देखा है। उन्हे बाजारू चीज लपेटनेवाले मोटे कागजमें लपेटकर रखा गया है; और, बेपरवाहीसे उन्हे उल्टा-पलटा जाता है, जिसके कारण कुछ चूर-चूर हो गये। इन्हे मैंने अपनी ऑखोसे देखा। गिलगित-में अबतक पड़े कागज़ और भोजपत्रपरके ग्रन्थोंपर क्या बीतती होगी, इसका अनुमान करनेपर भी चित्त विचलित हो उठता है।

प्रसिद्ध पुरातत्त्ववित् सर आरेल स्टाइन् संयोगवश उसी वक्त गिलगितकी ओरसे जा रहे थे। पुस्तकोंको देख कर उनके महत्त्व-पर उन्होने बाहरी दुनियाको इसकी सूचना दी। उन्होने पुस्तकोंके भविष्यसे भयभीत होकर कोशिश की कि, पुस्तके भारत सरकारके पुरातत्त्व विभागको दे दी जायँ, किन्तु इस बातको राज्य कब सुनने लगा?—हालॉ कि, राज्यका खर्च घटानेके लिये पहला प्रहार पुरातत्त्व-विभागपर ही किया गया—बल्कि उसे जड़मूलसे

ही उड़ा दिया गया। बतलाइये कि यह जो अमानुषिक अत्याचार उन अनर्घ पुस्तकोंपर, (जिन्हें कि १३, १४ शताब्दियोंके सुदीर्घ कालने भी पीड़ा नहीं पहुँचायी) हुआ है। क्या इससे यह अच्छा नहीं होता कि, वह देश या विदेशकी किसी भी ऐसी संस्थाके हाथमें जातीं, जहाँ ब्रिटिश म्युजियमकी तरह आधे इंचके टुकड़ोंको भी, दोनो ओर काचको पट्टियाँ लगाकर रखा जाता है। इन पुस्तकोंके साथ जो बर्ताव हुआ है, उसे देखकर आँखोंमे आँसू आता है। फ्रांसके महाविद्वान् आचार्य लेवी और फूशे भी इस आशंकासे मेरी ही तरह दुःखित हो रहे थे। मैने अपने देश-वासियोंके इस अत्याचारसे अतीव लज्जित होकर अभीतक आचार्य लेवीके पुस्तक सम्बन्धी प्रश्नोंका उत्तरतक नहीं दिया!

यद्यपि आक्सफोर्डके वर्णनमें यह बात अप्रासंगिक-सी मालूम होगी; किन्तु बोडलियन् लाइब्रेरी जैसी पाश्चात्य देशोंकी संस्थाओं के महत्त्वको आप समझ न सकेंगे, जबतक ऐसी घटनाओंका भी आपको ज्ञान न हो।

बोडलियन् पुस्तकालयमें प्रायः १॥, २ घंटे बीते। चित्त बड़ा ही प्रसन्न हुआ। वहाँसे निकलकर बेलियोल, ट्रिनिटी आदि कुछ और कालेजोंको देखा। इंडिया इंस्टिट्यूट उस समय बन्द था; इसलिये उसकी इमारतको बाहरसे ही देखा। इसमे भारतीयता-की जानकारीके लिये कितनी ही चीजें संगृहीत की गयी हैं। अन्तमे विश्वविद्यालय-संग्रहालय देखने गये। देखते हुए जिस

वक्त हम तिब्बती चीजोंके स्थानपर पहुँचे, उस समय वहाँ तिब्बत-के मठीय विश्वविद्यालयोंके छात्रोंके उन पीले रंगकी विचित्र टोपियों और गौनोंको देखा, जो आक्सफोर्डके छात्रोंकी काली चौकोर टोपियों और गौनोंसे बहुत बातोंमें मिलती है।

सभी कालेज ऐतिहासिक महत्त्व रखते है। एक छोटेसे लेखमें, छः हजार विद्यार्थियोंवाले इस विश्वविद्यालयका क्या वर्णन हो सकता है? इसमें भी जब लेखककी प्रकृति बात-बातमें अपने यहाँकी चीजोंकी तुलना करनेपर तुल जाय? संक्षेपमें यही समझिये कि, जिस बेलियोल कालेजके छात्र ऐडम् स्मिथ जैसे राजनीतिक अर्थशास्त्री, सौथी मेथ्यु अर्नाल्ड, स्विन्‌वर्न, एंड्युलाङ् जैसे कवि, लार्ड कर्जन, लार्ड मिलनर, वाइकौंट ग्रे, लार्ड आक्स-फोर्ड (मिस्टर आस्किथ) जैसे राजनीतिज्ञ हों, उसके प्रति उस देशवासियोंका क्या भाव होगा? आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज अंग्रेज जातिको जितनी किताबोंकी पढ़ायीसे शिक्षा देते है, उससे कई गुना ज्यादा अपने इतिहास, अपने ईंट-पत्थरों और अपने सजीव वायुमण्डलसे देते हैं।

अँधेरा होनेपर हमलोग स्टेशनपर पहुँचे और वहाँसे रेलपर चढ़कर ७॥ बजे लन्दनके अपने बौद्धविहारमें पहुँचे गये।

१०

पेरिसमें

चौदह नवम्बरको ग्यारह बजे लन्दनसे विदाई ले मैं पेरिसको रवाना हुआ। उस दिन चारों ओर कुहरा फैला हुआ था। आज मेरा टिकट द्वितीय श्रेणीका था। कितने ही मित्र स्टेशनतक पहुँचाने आये थे। आज डोवर और केलेके रास्ते जाना था। कुछ दूर चलनेके बाद कुहरा कम होने लगा। डोवरके पास पहुँचनेसे पूर्व ही बाईं ओर पथरीली पहाड़ियाँ दिखाई पड़ीं। इङ्गलैंडके गाँव फ्रांस और जर्मनीकी भाँति सुन्दर नहीं है। बारह बजेके बाद जहाजपर पहुँचे। आज समुद्र उतना खराब न था। दूसरे पार केलेमें जा रेलपर सवार हुए। ६ बजे अँधेरा हो जानेके बाद पेरिसकी गार-द-नोह (उत्तरी स्टेशन) पर उतरे। प्लेटफार्मपर आते ही, मेरे पीले कपड़ोंसे मिस लून्जबरी (सभापति) और मदाम लाफ्वाँ मंत्रीने पहचान लिया। मै अपने साथ तिब्बती चित्रपटों-की पेटी भी लाया था। उसे अभी कस्टम्में दिखलाना था। उस दिन समय न होनेसे कस्टम्वालोने दूसरे दिनके लिये रख छोड़ा।

मदम् लाफ्वॉ मोटरमें रु-मदामके ओ तेल् दे-ल आर्वे होटलमें पहुँचा। यहीं मेरे ठहरनेका प्रबन्ध किया गया था।

सर्दीका मौसम था, किन्तु गर्म किये मकानोंमें प्रविष्ट होना सर्दीके मानकी बात न थी। कमरा स्वच्छ और प्रशस्त था, कमरेके साथ ही स्नानागार भी था। नहानेका इतना आनन्द देखकर मैंने अन्तरियाकी जगह नित्य स्नान करनेका नियम कर लिया। होटलका किराया मेरे मेजबानोंको देना था, इस लिये पूछ न सका, तो भी ३०, ३५ फ्रांक ५, ६ रुपए रोजसे क्या कम होगा। सबेरेका जलपान होटलकी ओरसे था, मध्यान्ह भोजन मिस लून्जबरीके घरपर होता था, जो एक मिनटके रास्ते ही पर लुसम-बुर्ग प्रासादके पास था।

१५ नवम्बरको ३ बजे मिस लून्जबरी और मदाम् लाफ्वॉके साथ मुजी-ग्विमे गया। भारत, हिन्दू-चीन. आदि पूर्वके देशोंकी पुरानी चीजें यहीं रखी हुई हैं। यहाँ तिब्बतीय चित्रपटोंका अच्छा संग्रह है और यूरोपमें यह संग्रह सर्वोत्तम है। यहाँ आचार्य पेलियो द्वारा लाये मध्य एशियाके चित्रोंका भी संग्रह है। बर्लिनके ला कॉक संग्रहके बाद यह सबसे अच्छा है। सबसे तो अधिक चित्त तब प्रसन्न हुआ जब शाह अमानुल्लाके शासन कालकी खुदाईमे हड्डा वामियॉ आदिसे निकली चूने आदिकी मूर्तियों और चेहरेको देखा। इनकी खोदाई आचार्य फूशेने करायी थी। यह संग्रह सारे भूमण्डलमें अपने ढंगका अद्वितीय है। इनमे उस समय गंधार देशमे आनेवाली नाना जातिके पुरुषों—उनकी नाक,

ओठ, चेहरा, केश आदि—को सजीवताके साथ मिट्टी चूनेपर उतारा गया है। आचार्य फूशे कह रहे थे—खोदाईमें जब यह चीजे निकल आईं, तो हमारे आनन्दकी सीमा न थी। हम छोटी-छोटी उठाने लायक चीजोंको अपने डेरेमे रखते जा रहे थे। फिर उन्होने ठंढी साँस भरकर कहा—किन्तु, मौलबियोंने इन मूर्तियोंके खिलाफ ऐसी उत्तेजना पैदा कर दी थी कि, रातको आस-पासवाले, सैकड़ो मनुष्य चढ़ आये; और, अफसोस! कलाके उन अनुपम नमूनोंको क्रूरताके साथ तोड़ने लगे! हम आह भरी आँखोसे उनके इस दानवी लीलाको देखते रहे। कोई भी धर्म जो मनुष्यके हृदयमें ऐसा भाव पैदा कर सकता है, वह मानवजातिके लिये अभिशाप है!

१६ नवम्बरको आचार्य सिल्वे लेवीसे मिलनेका निश्चय था। दो बजे हम उनके मकान (9. Rue Guyede la Bruma) पर पहुँचे। सीढ़ीपर चढ़ते-चढ़ते तरह-तरहके भाव पैदा हो रहे थे। पैदा होने ही चाहिये; क्योंकि हम प्राचीन भारतके विषयमें, भूमण्डलके सबसे बड़े विद्वानके पास जा रहे थे। देवी लेवीके दर्शन पहले हुये। उन्होंने आचार्य श्रीको सूचित किया। थोड़ी ही देरमे आचार्यके साथ हम उनके कमरेमे थे। अस्सी वर्षके करीबका, पतला किन्तु स्वस्थ्य शरीर था। सारे बाल सनकी तरह सफेद थे। यहूदी जातिके नर-नारियोकी भाँति आप शुकनास थे। स्मित मुख, विकसित ललाट, चमकती आँखोंसे स्नेहकी किरणे चारों ओर फैल रही थीं। शिष्टाचारकी बातें,

जो और जगह भी साधारण है, उसे लिखकर मैं वास्तविकताके महत्त्वको कम करना नहीं चाहता। मै वक्ससे एक पुस्तक निकालकर खड़ा हो दिखा रहा था, उस समय आपके मुखसे जो शब्द निकले—Please be seated (कृपया, बैठिये) वह अपने स्वर, विराम, उच्चारण आदिमें अपार स्नेहके भावोंको रखता था। आचार्य लेवी वस्तुत मोह लेनेमें जादूगर (=यातु-धान वैदिक अर्थमे) हैं। इन ज्ञान वयोवृद्ध महापुरुषके दर्शन फिर होगे या नहीं यह नहीं कह सकता; किन्तु पेरिसमे उनकी मुलाकातकी स्मृति आजन्म न भूलेगी। दो बजेसे छः बजे शाम-तक पूरे चार घंटे अतृप्त हो हमारा वार्तालाप होता रहा। वहाँ ज्ञानका पारावार हमारे सामने तरंगित हो रहा था। एक बार प्रकरणवश मैने कहा—और हृदयसे कहा—आरम्भसे ही विद्याके पथपर अग्रसर होते वक्त, आप ही मेरे आदर्श थे। उन्होने कहा—क्या कहते हो, मै तो इतना ही जानता हूँ कि, मैं कुछ नहीं जानता। यह ध्रुव सत्य था। आदमीकी विद्या क्या है—जितना ही वह अधिक पढ़ता है, उतना ही उसे यह स्पष्ट अनुभव होने लगता है कि, वह क्या-क्या नहीं जानता। विद्या होनेपर पुरुष वैसे ही है, जैसे कोई आदमी आस-पास मीलो गहरे खड्डो-वाली एक छोटी-सी टिब्बीपर बैठा है। अंधेरेमे उसे अपनी स्थितिका ज्ञान कुछ नहीं होता, किन्तु जैसे ही प्रकाश आता है, वह अपने आस-पासके उन खड्डोको अनुभव करने लगता है; लेकिन हमे यह अर्थ नही निकालना चाहिये कि, विद्याका

पढ़ना ही निरर्थक है। हमें यह समझकर कि कोई सर्वज्ञ नहीं है, अपने ज्ञानके क्षेत्रको बढ़ाते हुये भी; हमे एक दूसरेकी सहायताको सत्कारपूर्वक लेनेके लिये तैयार रहना चाहिये। सामूहिक ज्ञानसे हम अपनी बहुत-सी कमियोंको पूरा कर सकते है।

आचार्य श्रीके साथ जिन विषयोपर वार्तालाप हुआ, उसे यहाॅ लिखनेकी आवश्यकता नहीं। यद्यपि वह हम दोनोके लिये बहुत ही सरस और आनन्दकर थे, तो भी हमारे पाठकोमेसे अधिकांशके लिये वह नीरस ही होंगे। आचार्य, संस्कृत, पाली, प्राकृत, भारतकी अनेक आधुनिक भाषाओ, तिब्बतीय, चीनी तथा यूरोपकी बहुत-सी भाषाओके आचार्य हैं। चीनी, तिब्बती, पाली संस्कृत ही नहीं; बल्कि मध्य एशियाकी लुप्त भाषाओमे भी प्राप्त बौद्ध साहित्यके आप सर्वतोमुखी पंडित है। भारतमें आप कई बार आ चुके है और कितने ही भारतीय आपके शिष्य है। प्राचीन भारतके इतिहासके कितने ही भव्य और शताब्दियोंसे विस्मृत अंशको सभ्य दुनियाके सामने लानेमे आपने वह काम किया है, जिसे भारतीय और भारतप्रेमी कभी न भुला सकेंगे।

गिल्गितमें निकले प्राचीन हस्तलिखित संस्कृत ग्रंथों—जिनके बारेमें आक्सफोर्डके प्रकरणमे लिख चुका हूॅ—के बारेमें प्राप्त पृष्ठोंके सहारे आप जूर्नाल-आसियातिकमे एक सचित्र गवेषणा पूर्ण लेख लिख चुके है। और उन पुस्तकोके बारेमे वह मुझसे भी अधिक उत्सुक थे। पेरिसमे भी उनकी खोज लेनेके लिये

मुझे प्रेरित किया था और पीछे भारत लौटनेपर पत्र द्वारा भी प्रेरित किया। मै कश्मीर आया, वहाँ जो हुआ, उसे मैं संक्षेपमे लिख चुका हूँ। उसे पढ़कर आचार्यको क्षोभ अवश्य होगा। उन्होने उन ग्रंथोकी रक्षा और प्रकाशमे लानेके लिये मालवीय जीको एक पत्र मेरे द्वारा भिजवाया था। बड़े आदमियोंसे डरने वाला मै स्वयं तो नही गया; किन्तु डाकद्वारा पत्रको मालवीयजीके पास भेज दिया, जिसका उत्तर मुझे कुछ नही मिला। गंगाके पुरातत्त्वांकके लिये "महायानकी उत्पत्ति", "मंत्रयान, वज्रयान चौरासी सिद्ध" पर दो लेख लिखे थे। मैने अँग्रेजीमे अनुवाद कर पहले लेखको तो लंदनसे ही भेजा था, जिसे आचार्यने अपने जूर्नाल्-आसियातिकमे प्रकाशित करनेकी इच्छा प्रकट की थी। दूसरा अब साथ लाया था, दोनोको उन्होने ले लिया। हमारे वार्तालापके बीचमें एक बार देवी लेवी भी आई थीं। वह १९२१-२२ (?) मे अपने पति देवके साथ भारत आई थीं। उस वक्त उन्होंने फ्रेंचमे "सीलोनसे नेपाल" नामक अपनी यात्रा लिखी थी। उसे मैं पढ़ चुका था, इसलिये उनके सहानुभूतिपूर्ण हृदयसे पूर्णतया परिचित था। बीचमे आचार्यके वड़े पुत्र आये, पिता द्वारा पुत्रका ललाट-चुम्बन बड़ा ही मधुर दृश्य था। दूसरे दिन सोरबोन आनेका वचन देकर मैंने विदाई ली।

हमारे वार्तालापके समय ही गोवानिवासी श्री बर्गन्सा वहाँ आ गये। उन्होने मुझे अपने स्थानतक पहुँचानेका कष्ट उठाया। आपको यूरोप आये १६, १७ साल हो गये। मराठी आपकी मातृ-

भाषा है। आपका वंश आंध्रसम्राट् शातकर्णि या शातवाहनोंसे सम्बन्ध रखता है। पोर्तुगीजोंके गोवापर अधिकार जमानेके बाद आपका वंश भी औरोंकी भाँति ईसाई हो गया। अँग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, इटालियन आदि यूरोपकी भाषाओंको आप अप्रयास सुन्दर रीतिसे बोलते हैं। पिछले छः-सात वर्ष आप रूसमे ही रहे। निडर भविष्यचेता होते भी आप भारतीय संस्कृतिका बड़ा सन्मान रखते हैं। भारतकी कई आर्य भाषाओंके अतिरिक्त आप संस्कृत और पाली भी जानते हैं। इस वक्त आप भारतीय नृत्यकलापर एक सुन्दर ग्रंथ फ्रेंच भाषामे लिख रहे हैं। "भारत नाट्यशास्त्र", और "संगीत-रत्नाकर" नामक संस्कृत ग्रंथोमे भारतीय नाट्यपर काफी लिखा गया है। भारत नाट्यशास्त्रमें तो चार-पॉच सौ श्लोकोंमे नाट्यका सविस्तार वर्णन है। इससे पहले भी मैं उन ग्रंथोको देख चुका था; किन्तु मालूम होता है, उन प्रकरणोंको विषयके परिचय न होनेसे छोड़ दिया था। कितनी ही बार श्री बर्गेन्सासे मिला, किन्तु पहले शायद संकोचवश उन्होंने कुछ नहीं कहा। परी छोड़नेसे चार-पॉच दिन पूर्व २५ नवम्बरको कहा, इन ग्रंथोंके कुछ अंशोंके अर्थ जाननेमें मैं आपकी सहायता चाहता हूँ। मैंने सहर्ष स्वीकृति देते कहा— मैं तो सिर्फ शब्दार्थमे ही सहायता कर सकूँगा। हॉ, हो सकता है, आपके नाट्यज्ञानके मिलनेसे भाव स्पष्ट हो जायँ। हॉ तो, श्री बर्गेन्सा पाश्चात्य नाट्यकलाके अच्छे अभिज्ञ हैं; और, आपकी पत्नी तो मास्कोकी एक निपुण नटी हैं। २६ से २९ नवम्बरतक

हम दोनों मिलकर उक्त दोनो ग्रंथोंके अभिलषित अंशोको पढ़ते रहे। उस समय उनके मुखसे यह भी पता लगा कि, यूरोपके उच्च कोटिके नृत्योंमे भी वे यही "करण" (=हाथ-पैरकी विशेष गतिसे नृत्य प्रदर्शनकी मूल इकाई) आदि है और पन्द्रहवीं-सोलहवी शताब्दियोंमें यूरोपने पूर्वसे इस विषयकी बहुत-सी बाते सीखी है। श्री बर्गन्साकी पुस्तक, जिस समय (३१ जुलाई १९३३ ई०)मे इन पंक्तियोंको लिख रहा हूँ, इस वक्ततक छप गयी होगी। उनसे मैंने कहा था कि, उसका मराठीमे भी अनुवाद कर डाले। मराठी अनुवाद छप जानेपर किसीको उसका हिन्दी अनुवाद जरूर करना चाहिये।

आज ९ बजे रातको बौद्ध मित्र मंडल (L Amis du Buddhisma) मे मेरा व्याख्यान हुआ। विषय था "पूर्वमे बौद्धधर्मकी जागृति", साथ-साथ फ्रेंच अनुवाद भी होता जाता था। मित्र मंडलीमे सभी शिक्षित तथा ऊपरी श्रेणीके नर-नारी है। आज यह भी निश्चय हुआ कि, चित्रपटोकी प्रदर्शनी मुजी-ग्विमेमे की जाय। तैयारीमे कुछ समय भी लगेगा, इसलिये २९ नवम्बर तक यही रहना निश्चय हुआ।

१७ नवम्बरको बर्गन्सा महाशयके साथ पेरिसके सबसे बड़े पुस्तकागार बिब्लियोथिक्-नाश्नाल (Bibliothic Nationale) मे गये। अपने बज्रयानवाले लेखको वहाँ कुछ पुस्तकोंसे मिलाना था। बिना विशेप सिफारिशके इस पुस्तकालयमे

प्रवेश मुश्किल है। लेकिन वह काम आचार्य लेवीने कर दिया था। एक कई तलोंवाले विशाल भवनमें, संसारके तीन महान् पुस्तकालयोंमें, एक, यह पुस्तकागार स्थापित है। फ्रेंच जातिके विद्या प्रेमका यह ज्वलंत उदाहरण है। वहाँ मुझे तिब्बती स्तन्-ग्युरकी एक पोथीसे काम था। देखा, पुस्तक पैकिनके लकड़ीके छापेकी है और लम्बे चौकोर बक्सोंमें अलग-अलग सुरक्षित रखी हुई है।

वहाँसे तीन बजे सोरबोन् (पेरिस् विश्वविद्यालय) गये। आचार्य लेवी, आचार्य फूशे, और उनके शिष्य वहाँ मौजूद थे। वहाँ चौरासी सिद्धोंके बारेमे ही मैंने कुछ कहा। वहीं श्वेत केशश्मश्रु-धारी एक वृद्ध पुरुषके दर्शनका सौभाग्य हुआ। आचार्य लेवीने मजाक करते हुए कहा—आप काम शास्त्रके विशेषज्ञ है! पीछे मुझे सर्दार उमरावसिंहसे बातचीत करनेका मौका मिला। आप पंजाबके रहनेवाले है। ४ वर्षसे इधर ही रह रहे है। आपके साथ सर्दारिनी भी आई थीं, किन्तु अब वह भारत लौट गई थी। उनकी कन्या यहीं शिक्षा ग्रहण कर रही है, इसलिये सर्दार साहेब यही ठहरे हुये हैं।

१८ नवम्बरको लूव्रे प्रासादमें फ्रान्सके महान संग्राहालयको देखने गया। सिर्फ ग्रीस (यवन) मूर्तियोको ही देखनेके लिये महीनो चाहिये। यवन-कलाके इन भव्य नमूनोंको देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। नाना प्रकारके चीनी बर्तनोंको भी कई बड़े-बड़े कमरोंमें

प्रदर्शित किया गया है। फ्रांस सरस्वतीकी आराधनामे यूरोपकी सब जातियोमे ज्येष्ठ है और उन्नतिमें किन्हीं विषयोमे जर्मनी इससे श्रेष्ठ है और किन्हीमे यह जर्मनीसे। इंग्लैण्ड हर बातमें तीसरे ही नंबरपर रहेगा। इस संग्रहालयमे आपको ईरान, असुर, मिश्र आदि देशोकी अनेक पुरातन चीजे और कलाके नमूने मिलेंगे। यहीं मूर्तियोकी प्रतिकृति बनानेका भी प्रबन्ध है। आप जिस मूर्तिकी प्रतिकृति लेने चाहे, वहाँसे बनवा सकते है।

प्रोफेसर दुर (Duır) 'वद्-दो-थोस्-ग्रोल्' नामक तिब्बती पुस्तकका फ्रेंच अनुवाद कर रहे थे। यूरोपके लोग विद्याके काममें एक दूसरेकी सहायताके महत्त्वको समझते है। चाहे स्वयं अच्छा जानते हो, तो भी दूसरेकी सहायतासे लाभ उठानेके लिये उत्कंठित रहते है। प्रोफेसर दुरने मुझसे कुछ सहायता चाही; मैने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। वह बराबर उसके लिये आते रहे। पेरिसमे मैने देखा, तिब्बती जैसी अपरिचित भाषाके भी दर्जनो जानकार है। कुमारी लालू, जो बिब्लियोथिक् नाश्नालमें काम करती है, तिब्बती चित्रोके एक संग्रहका एक सचित्र सुन्दर सूचीपत्र बनाया है, जिसकी एक प्रति उन्होने कृपाकर मुझे भी प्रदान की। मुजी-ग्विमेके आचार्य बकोने एक तिब्बती-संस्कृत कोशको प्रकाशित कराया है। नवयुवको और नवयुवतियोंके विद्या-प्रेमको देखकर आश्चर्य होता था। २१ नवम्बरको मेरे पास एक १८ वर्षका तरुण आया। वह इस वर्ष बी० ए० के अन्तिम वर्षमे था। उसका पिता पेरिसके श्वेत-रूसी समुदायसे सम्बन्ध

रखता है। रूसी और फ्रेंचके अतिरिक्त यह अँग्रेजी, जर्मन, इटालियन, स्पेनिश, पोर्तुगीज भाषाओंको जानता था। कुछ अरबी और फारसीको भी समझता था। इस वक्त पाली पढ़ रहा था। उसका पिता पेरिसका एक अच्छा गन्धी (—सुगन्धियोंका व्यापारी) था। एक दूसरी आफतकी परकाला लड़की कुमारी सेल्वर्न सोर्बोन्‌में मिली, यह संस्कृतकी छात्रा है और कालेजके अन्तिम वर्षोंमें बौद्धदर्शन उसका विषय है। दिङ्नागकी बड़ी भक्त है। योगाचार दर्शनपर मुझसे बातचीत कर रही थी। वहीं एक दूसरे विद्यार्थीने बौद्धदर्शनपर चर्चा करते हुये कहा—कार्य-कारणके नियमको अचल माननेपर कर्ता स्वतंत्र कैसे रहेगा?—मैंने कहा—चेतनाका अर्थ ही है विचारोंकी स्वतंत्रता।

२२ नवम्बरको मेरे चित्रपटोंकी प्रदर्शिनीका उद्‌घाटन हुआ। उसी दिन सोर्बोन्‌के पास मुझे एक मिश्रदेशीय तरुण महाशय गलाल (जलाल) मिले। बड़े प्रेमसे मुझे अपने निवास-स्थानपर ले गये। वह बड़े ही साधारण तौरसे रहते थे। मैंने उनसे पूछा कि, आपका खाना, मकान आदिपर महीनेमें कुल कितना खर्च आता है। हिसाब करनेपर मालूम हुआ ६०० फ्रांक। ६०० फ्रांकका मतलब है, जब रुपया और कागजी पौण्डका गंठजोड़ा नहीं हुआ था, उस वक्तके हिसाबसे ६० रुपयेसे भी कम। आजकलके हिसाबसे १००) मासिकके करीब। मुझे आश्चर्य होता है कि, भारतीय विद्यार्थी, जिन विषयोंको फ्रांस और

जर्मनीमें इंग्लेण्डकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह पढ़ सकते हैं, वह इसके लिये इंग्लैण्ड क्यो जाते है ?

रूसमें बौद्ध इतिहास और संस्कृत सम्बन्धी बहुत-सी वस्तुओं-का उत्तम संग्रह है। आचार्य चिखासकी, आचार्य ओल्डन वर्ग, ओवर मिलर जैसे बौद्ध साहित्य और दर्शनके चोटीके पंडित भी वहाँ रहते है, इसलिये मेरी बड़ी इच्छा थी कि, वहाँ जाऊँ। पास-पोर्ट तो खैर मिल गया। अब रूसी बीसेकी आवश्यकता थी। सोवियट दूतावासमे जानेपर मालूम हुआ कि, इसमे एक मास लग जायगा। तिसपर भी मिलना सन्दिग्ध था। रूसी यात्रा प्रबंधक संस्थाके पास गया। उन्होंने कहा—एक सप्ताहमे हम प्रबन्ध कर देंगे, किन्तु रूसमें रहते वक्त द्वितीय श्रेणीके प्रबन्धके लिये आपको १० डालर (=४० रुपये) रोज देने होंगे। यद्यपि १० डालरमें जो सुविधा (होटल खर्च, खाना-खर्च, म्युजियम सिनेमा थियेटरके टिकटोका खर्च, एक टेक्सी और एक दुभाषियाका खर्च आदि) मिलती थी, उसके सामने यह मूल्य कुछ नहीं था। किन्तु मैं तो महीने दो महीनेके लिये जानेवाला था, फिर इतना रुपया ला कहाँ-से सकता था ? मैंने रूस जानेकी इच्छासे बड़े उत्साह-पूर्वक रूसी भाषा सीखनी शुरू की थी। मुझे यूरोपकी सभी भाषाओंमे यह सरल मालूम हुई। रूसी भाषा संस्कृतसे बहुत समीप भी है। उदाहरणार्थ एतत् = एतोत्, तत् = तोत्, द्वे = द्वे, द्वा, चत्वारि = चेत्वेर। संस्कृतकी भाँति अस्ति भवतिक्रिया इसमे भी छोड़ दी जाती है। इसमे अंग्रेजीके आर्टिकलोका ही झगड़ा नहीं है, बल्कि

इसकी वर्णमाला नागरीकी भाँति पूर्ण, और जैसे लिखी जाती है, वैसे ही बोली जाती है। मदाम् लाको तीस……से बड़े उत्साहसे मुझे रूसी पढ़ाती थीं।

२७ नवम्बरको चित्रपटोंकी प्रदर्शिनी समाप्त हुई। यहाँ अभिज्ञोने खूब प्रशंसा की। इस बार भी श्री हेरमान्से कितनी ही बार कथा-समागमका मौका मिला। उन्होंने बड़ी सहायता की।

२९ नवम्बरको तीन बजे मदाम् लाफ्वाँ परीके उपनगर और दीहातको दिखलानेके लिये मुझे अपनी मोटरपर ले चलीं। फ्रांस, जर्मनी आदि देशोमें सड़कपर दाहिनी ओरसे चलना होता है, और इसलिये ड्राइवर मोटरमें बाईं ओर बैठता है। शहरसे निकलते वक्त अभी तीन ही बजा था, सूर्य इंगुरकी भाँति लाल था। उपवनों, और वनो, पुलो और नदियो, कितनेही गाँवोको देखते हम वर्साइ (वर्सेलिस) प्रासाद तक गये। मदाम् लाफ्वाँ एक बड़े ही सम्भ्रान्त कुलकी महिला है। बुद्ध धर्मकी बड़ी अनुरागिणी है। उन्होने एक तिब्बती पुस्तकका अँग्रेजीसे फ्रेंचमें अनुवाद किया है। भगवान बुद्धके १५२ उपदेशोंवाले मज्झिम निकायका भी वह अनुवाद कर रही थीं। वह और कुमारी लेञ्जवरी फरवरीमे लंकामें आकर कितने ही मासो रही थीं। बौद्ध धर्मके प्रचारसे बड़ा ही उत्साह रखती हैं।

कुमारी लेंजवरी अमेरिकन हैं; किन्तु बहुत वर्षोंसे पेरिसमें ही रह गयी हैं, बड़ी ही सुसंस्कृत और भगवान बुद्धमें असीम प्रेम

रखनेवाली है। वह बुद्ध धर्मके प्रचारमे सतत् परिश्रम करती रहती हैं। उनका विचार है कि, एक एकान्त शान्त स्थानमें, एक बौद्ध आश्रम कायम किया जाय, जहाँ फ्रांसके बौद्ध समय-समयपर एकान्त चिन्तन कर सके। इनकी सहचरी, एक अँगरेज महिला, जो अब फ्रांस देशवासिनी हो गयी है, बड़ी ही मधुर स्वभाववाली हैं। उनका भाई भारतमे फौजी अफसर था। उस समय वह भारतमें आकर बहुत दिनो तक रही। इस वृद्धावस्थामे भी उन्हे भारतकी बहुत-सी बाते याद है, और, बुद्ध और उनकी मातृभूमिसे बहुत प्रेम करती है। मेरे पेरिसमे रहते मेरे भोजन आदिका बहुत खयाल इसी देवीसे रहता था।

इस प्रकार दो सप्ताहसे अधिक पेरिस नगरमे रहकर अनेक मित्रोकी मधुर स्मृति लिये २९ नवम्बरको रात्रि सवा नौ बजे वहाँसे जर्मनीके लिये रवाना हुआ।

११

जर्मनीकी सैर

सत्ताइस जुलाई, १९३२ ई०को मैं लन्दन पहुँचा था। तबसे १४ नवम्बरतक इंगलैंडमें ही रहा। वहाँके निवासके बारेमें फिर लिखूँगा। १४ नवम्बरको मै परी (Paris) नगरीके लिए रवाना हुआ और २९ नवम्बरतक वहाँ रहा। दो व्याख्यान होनेके अतिरिक्त मेरे तिब्बतसे लाये चित्रपटोकी वहाँ, मुजीग्विमेमे, प्रदर्शनी भी हुई। २९ नवम्बरको चित्रोंको मैंने रेलवे पार्सलसे भेज दिया और स्वयं फ्रांकफुर्त (जर्मनी) के लिये रवाना हुआ।

सवा नौ बजे रातको (प्रायः) पाँच घंटे रात बीते हमारी ट्रेन परी स्टेशनसे रवाना हुई। रास्तेमें जिस वक्त गाड़ी फ्रांसकी सीमा पार कर जर्मनीमे घुसी, जकात (Custums) वालेने आकर पूछ-ताछ की। सिगरेटके लिये विशेष तौरसे पूछा! फिर पासपोर्ट देखनेवाला आया। अँग्रेजी प्रजाके लिये फ्रांस और जर्मनीमे वीसे (Visas) की आवश्यकता नहीं होती। हमारे खानेकी दोनों

बेंचोंपर अकेले हमी थे, इसलिये सोनेका आराम रहा। गाड़ी फ्रांकफुर्त, १० बजे सबेरे या घंटा दिन चढ़े, पहुँचनेवाली थी। आठ बजे पह (प्रभा) फटने लगा, और, फिर ड्वाश्-लान्ट् (जर्मनी) की सुहावनी भूमि दिखलाई देने लगी। भूमि ऊँची-नीची तथा पहाड़ोंसे घिरी थी। लम्बे-लम्बे जुते हुए खेत और पत्रहीन नंगे वृक्षोंकी भरमार बतला रही थी कि, जर्मनी सिर्फ कारखानोंका ही देश नहीं है। जगह-जगह, कस्बोंमे भी, बड़ी-बड़ी चिमनियोंवाले कारखाने है। रेलमे मिलनेवाले दीर्घकाय हृष्ट-पुष्ट आफिसर फ्रांसके नफासतपसन्द दुबले-पतले शिक्षितोंसे पृथक हो रहे थे।

परीसे ही मित्रोंने, सबेरेके कलेवेके लिये, दो सेव और सैंड-विच्के दो-तीन टुकड़े रख दिये थे। सैंडविच्को, सत्तूकी तरह, "बहुगुणा" भोजन समझिये। पतली पावरोटी बीचसे फाड़कर और उसमे मक्खन लगाकर एक पतली तह बैकन् (सूअरके मांस) की रख दी जाती है, बस, यही सैंडविच् है। इसके ऐसा नाम पड़नेका कारण यह बतलाया जाता है कि, इंगलैंडमे लार्ड सैंडविच् नामक सामन्त हर वक्त जूए और पासेके खेलमे लगा रहता था। वह अपने खेलको छोड़कर खानेके लिए भी अधिक समय नहीं लगाना चाहता था, इसलिए नौकर खेलपर ही, उसे उक्त प्रकार-का भोजन रख देते थे। वह खेलते-खेलते उसे खाता जाता था! लार्ड सैंडविच्का खाना होनेसे उसका नाम ही सैंडविच् पड़ गया।

मैं सेव और सैंडविच् खाकर तैयार था कि, १० वजे हमारी ट्रेन फ्रांकफुर्त आम् माइन् स्टेशनपर पहुँची। श्रीयुत इन्द्रवहादुर सिंहको अपने आनेकी सूचना पहलेसे ही दे रखी थी—और, साथ ही, इस बातकी भी कि, मेरे नारंगी रंगके कपड़े दूरसे ही मालूम पड़ जायँगे! सचमुच ही, प्लाटफार्मपर उतरते ही देखा, चश्मा दिये, भेंड़के खालकी सफेद गाँधी टोपी लगाये एक हृष्ट-पुष्ट नौजवान सामने आ खड़े हुए हैं। उनके साथ एक दूसरे सज्जन थे, जिनका परिचय इन्द्रजीने जापाननिवासी प्रोफेसर डाक्टर कितायामा कहकर दिया। टैक्सी करके हम लोग शूमान्-स्ट्रासे गये। डाक्टर कितायामा जापानके जो दो सम्प्रदायके बौद्ध भिक्षु है। १० वर्ष पूर्व, उन्हे जर्मनीमे संस्कृत और आधुनिक अन्वेषण-की विद्या सीखनेके लिये उनके मठने भेजा था। डाक्टर (Ph D.) होनेके बाद, कितने ही वर्षोसे, वह मारबुर्ग और फ्रांकफुर्तके विश्वविद्यालयोमे बौद्धधर्म तथा चीनी भाषाके अध्यापक है। डा० रुदाल्फ ओतोने उन्हे खास तौरसे, मुझे मारबुर्ग लानेके लिये भेजा था।

श्रीयुत इन्द्रबहादुरके अतिरिक्त श्रीयुत ए० वसु और डाक्टर देवीलाल, दो और भारतीय यहाँ रहते है। तीनो ही वड़े देशप्रेमी सज्जन है। वसु महाशयकी जर्मन स्त्री स्वयं Ph.D. तथा कई बड़ी कम्पनियोके डाइरेक्टर तथा एक सम्भ्रान्त पिताकी एकलौती लड़की हैं। विदेशमे विवाह करनेवाले भारतीयोंमें अक्सर देखा जाता है कि, वह सुसंस्कृत, सुशिक्षित सम्भ्रान्त कुलोमे शादी
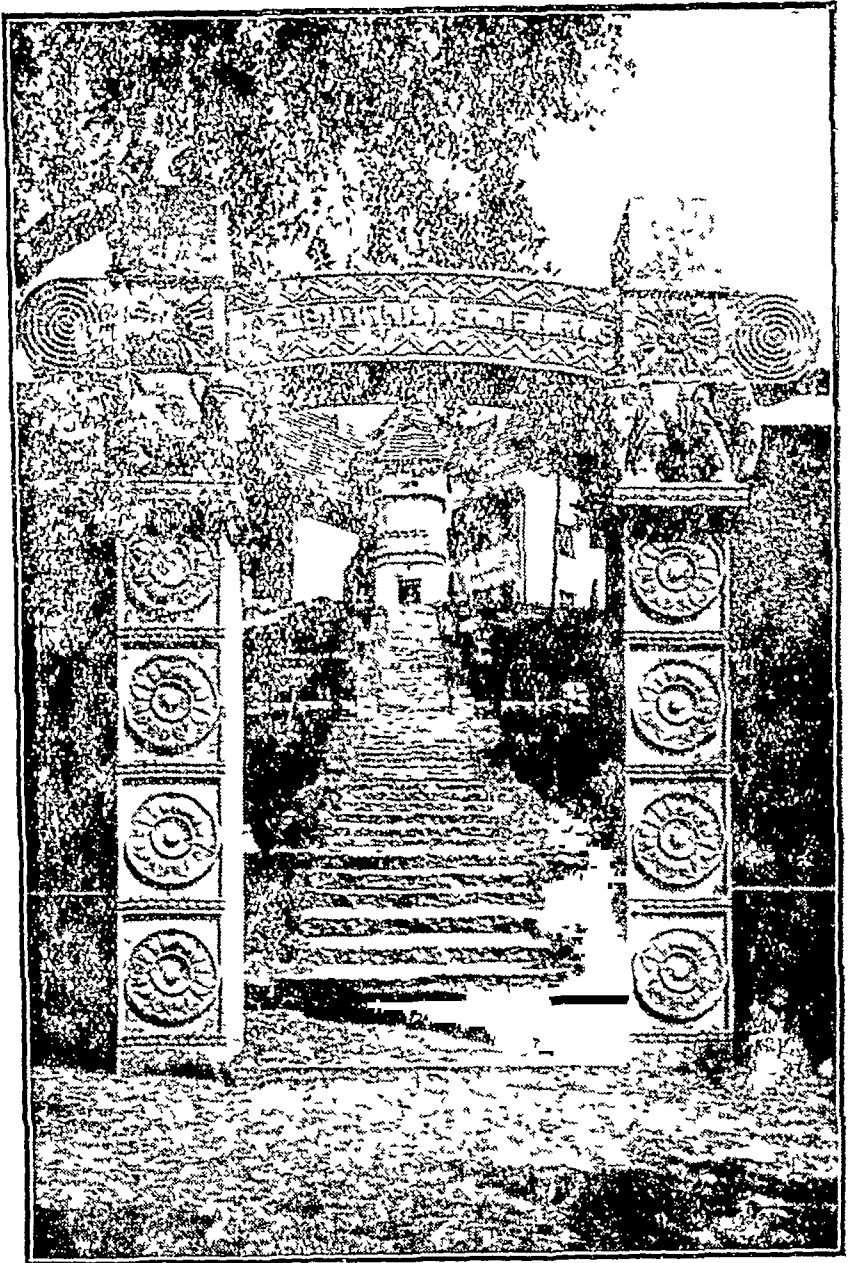
बर्लिन—बौद्धगेहका प्रधान द्वार

बर्लिन—बौद्धगेह (फ़ोनो)
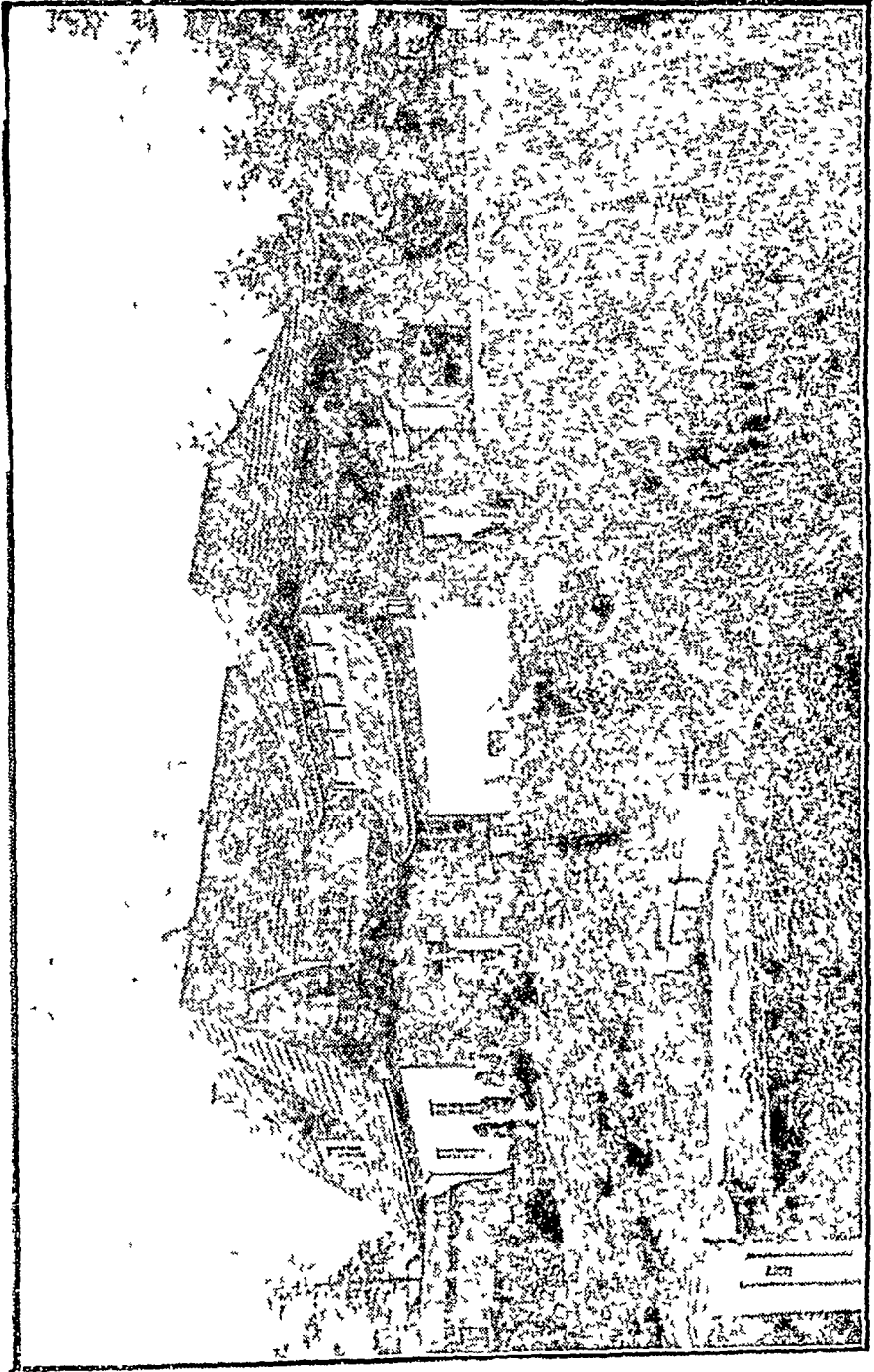
नहीं करते। श्रीयुत वसुका विवाह इसका अपवाद है। इन्द्रकी भाँति वसु भी खालकी गाँधी टोपी पहनते है। इसके लिए उन्हे, एक-एक टोपीपर, तीस-तीस मार्क (३० रुपये) खर्च करने पड़े। थोड़ी देरके ही वार्तालापसे फ्रांकफुर्त भी घर बन गया। इन्द्रजीसे ही मालूम हुआ कि, "सत्यनारायण आजकल स्कन्धनाभीय देशोमे गया हुआ है। भारी घुमक्कड़ है। निबन्ध समाप्त होते ही निकल गया।"

आचार्य ओतोसे मेरा परिचय १९२७-२८ मे, लंकामें हुआ था। उस समय यद्यपि हमारा वार्तालाप दो ही घंटे हो पाया था; किन्तु तभीसे हमारी बहुत घनिष्ठता हो गयी थी। पत्र-व्यवहार ही जारी नहीं था, बल्कि एक बार तो (जब कि, मै ल्हासामे था) उन्होंने अपना पत्र जर्मनीमे लिखकर, साथ ही ह्यूगोका 'जर्मन स्वयंशिक्षक' और 'जर्मन इंगलिश कोश'—यह कहकर भेज दिया कि, 'अब वादा करनेका काम नहीं, आपको मेरे पत्रोके लिए जर्मन सीखनी ही पड़ेगी।' मैंने इस प्रेमके बलात्कारको स्वीकार तो किया, किन्तु अधिक समयतक लगा न रहा। वस्तुतः फ्रेंचकी भाँति कितनी ही जर्मन पुस्तकोंको भी अपने कामके लिये पढ़नेकी यदि मजबूरी हुई होती, तो उसमे भी काम चलने लगता। आचार्य ओतो सत्तर वर्षसे ऊपरके है। संस्कृतके नामी विद्वानोमें है, तो भी संस्कृतसाहित्यके बहिरंग विषयोकी अपेक्षा, अन्तरंग विषयोपर ही उनके अधिकांश ग्रन्थ और लेख है; इसी लिये थोड़े ही भारतीय, उन्हे प्राच्य-तत्त्व-विशारद जानते है। मारबुर्ग

विश्वविद्यालय (जर्मनी मे) धर्मशास्त्रके लिये सबसे प्रसिद्ध विश्वविद्यालय है। कई वर्षोंतक उसके यह चांसलर रह चुके हैं। विचारोंमें यह श्रीयुत एण्ड्रूजकी तरह, अत्यन्त उदार, ईसाई है। योगके प्रेमी और अभ्यासी हैं।

दूसरे दिन डाक्टर कितायामाने आकर कहा कि, "आचार्य ओतो, फेफड़ेके रोगके कारण, शीघ्र ही इटलीके समुद्रतटपर चले जानेवाले है; इसलिये आप शीघ्र ही चलिए।" इस प्रकार १ दिसम्बरको, डा० किताके साथ, दोपहरकी गाड़ीसे, मै मारबुर्गके लिए चल पड़ा। आज दिन था; इसलिए खेत, गॉव, पहाड़, सभी खूब दिखाई पड़े। आज, एक जगह, खेतोंमें, बैलोको हल जोतते देखा। फ्रांस और इंगलैंडमे सिर्फ घोड़ोंका ही हल जोतते देखा था। दो घंटेकी यात्रा समाप्त कर मारबुर्ग पहुँच गये।

मारबुर्ग ४०, ५० हजारका एक छोटा-सा शहर है। शहरका पुराना सामन्तशाही महल और कितने ही घर तथा गिर्जे पहाड़के ढलावपर बसे हुए हैं। पहाड़ और उसके नीचे सर्वत्र वृक्षो और वनस्पतियोकी अधिकता है। इस जाड़ेमें देवदारको छोड़कर बाकी सभी वृक्ष पत्तोसे शून्य हैं। नगरकी स्वच्छता और सफाईके बारेमें तो क्या कहना! शहरकी ओर बढ़ते ही यह बात मालूम हुई कि, यहाँ अनेक स्त्रियाँ लम्बे-लम्बे सुनहले केश रखती है। आजकल इंग्लैड, फ्रांस (और जर्मनीके अधिकांश स्थानों) में स्त्रियोने बालोको कटा डाला है। किसी भी स्त्रीके सारे बाल देखनेमे

आश्चर्य मालूम होता है! पता लगानेसे मालूम हुआ, मारबुर्गके आसपास, देहातोंमें, अभी "सनातनी" स्त्रियाँ मिलती हैं! यह अपने केशोंको, चाँदपर, जूड़ेकी शक्लमें वैसे ही बाँधती हैं, जैसे चम्पारनकी देहाती, पुरानी चालकी स्त्रियाँ! जहाँ मैं इन्हे अचम्भे-से देख रहा था, वहाँ यह भी, जहाँ-तहाँ पचीसोंकी संख्यामें खड़ी मेरे पीले वस्त्रोंको देख रही थीं।

होटलमें थोड़ी देर विश्राम करनेके बाद मैं, कितायामाके साथ आचार्य ओतोके घरपर गया, जो थोड़ा चढ़कर पहाड़पर था। छः बज गये थे; दो घंटे रात बीत चुकी थी, सर्दी भी खूब था; तो भी यूरोपमें घरोंको गर्म रखनेका रवाज है; जिसके कारण बाहर सर्दीके मारे ठिठुरते हुएको भी घरमें कोट-टोपी उतारनी पड़ती है। घंटी बजाते ही नौकरानी आयी। डा० किताने मेरे आनेकी खबर भेजी। थोड़ी ही देरमें दीर्घ-काय श्वेतश्मश्रुकेशधारी तुंग आर्य-नास आचार्य ओतो सीढ़ियोंपर सामने थे। देखा, शरीर कुछ दुर्बल था। मालूम हुआ, इधर स्वास्थ्य ठीक नहीं था। सत्तरके ऊपरका शरीर था, तो भी कमर झुकी नहीं थी! स्वागत-के बाद उनकी बैठकमें गया। वार्तालाप आरम्भ हुआ, तो पूरे पाँच घंटेतक होता रहा! समय समाप्त होता जाता था, किन्तु हमारी बात नहीं समाप्त होती थी! मैंने भी इधरके कुछ अपने कामोंका ब्योरा सुनाया। आचार्यने यामुनाचार्यके "सिद्धित्रय"के अपने जर्मन अनुवादकी भी चर्चा की। पूछा—"आपको हमारा देश कैसा दीख पड़ता है?" मैंने उत्तर दिया—"यद्यपि जाड़ेसे,

पतझड़के कारण, देशका पूरा सौन्दर्य मेरी आँखोसे ओझल है; लेकिन मै हिमालय जैसे स्थानोसे परिचित हूँ; इसलिये यह समझनेमें मुझे जरा भी दिक्कत नहीं कि, गर्मियोमें यह देश, विशेषकर मारबुर्ग तो नन्दन-कानन रहता होगा।" उन्होंने कहा—"कवीन्द्र रवीन्द्र गर्मियोमे यहाँ आये थे; उन्होने भी मारबुर्गके सौन्दर्यकी प्रशंसा की थी।"

मैंने वहाँकी ग्रामीण स्त्रियोंके जूड़ों और बैलके हलोका जिक्र करते कहा कि, "इनमे मुझे ऋग्वेद-कालीन आर्योंके "उष्णीष" और हलोकी समानता मालूम होती है।" उन्होंने बतलाया कि, "मेरे बचपनमे, जर्मनीमें, सभी हल बैलोसे ही चलते थे; उस समय घोड़ोंके हल कुछ धनिकोंके शौकमे शामिल थे। ग्रामीण जनता पुरानेपनकी बड़ी भक्त होती है, इसलिये उसके रीति-रवाजोमे कुछ ऐसी बातोका मिलना आश्चर्यकर नहीं, जो यूरोपीय और भारतीय आर्योंके सम्मिलित पूर्वजोमे प्रचलित थी।" आर्यों-की बात चलते ही वह और मैं, दोनो ही, अनुभव कर रहे थे, मानो, हजारों वर्षके बिछुड़े बन्धुओंका प्रेमालाप चल रहा हो! उन्होने ऋग्वेदके "दधिक्रा" और "नासत्या" शब्दोपर बात करते हुए कहा—"दधिक्रा" घोड़ेका नाम है, किन्तु "दधत् क्रामतीति"-की व्युत्पत्तिसे नहीं। आरम्भमे आर्योंका, सवारीके लिये, घोड़ा पालना बहुत सन्दिग्ध है। मालूम होता है, आजकलके दक्षिणी रूसके बासिन्दोंकी भाँति (जो घोड़ियोको विशेषकर "कूमिस्" (दहीसे बना एक प्रकारका पेय पदार्थके लिये पालते है) वह भी,

जर्मनी—डाक्टर रुदाल्फ ओतो (मारबुर्ग)
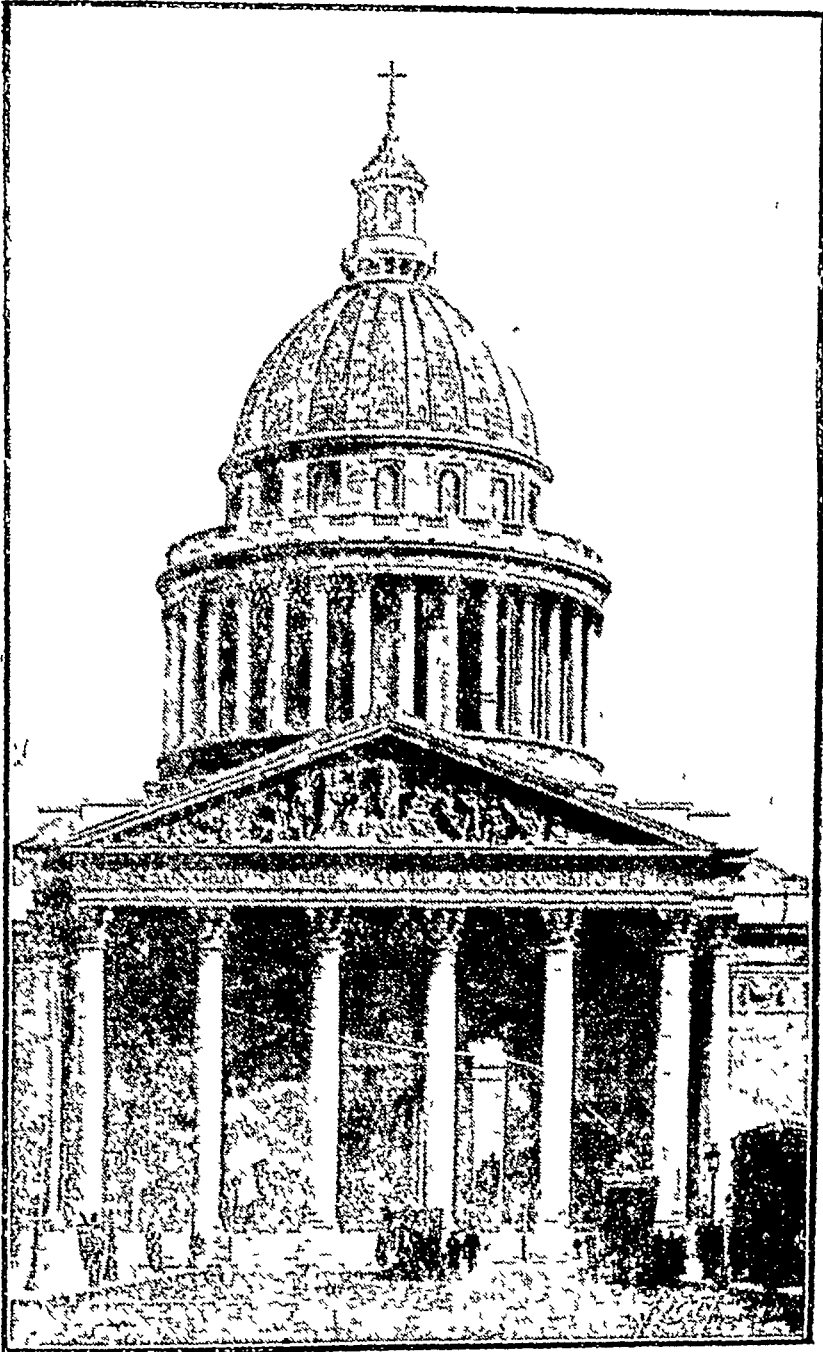
पेरिस—ला पेथियन्

दहीके लिये, घोड़ोंको पालते थे, और, "दधिक्रा"में दधि शब्द दहीके लिये ही है।"

मुझे तो दोपहरके बाद खाना ही नहीं था; इसलिये उनके भोजनके समय बैठे-बैठे बात-चीत होती रही। वहीं उन्होंने अपनी वृद्धा बहनसे परिचय कराया। दूसरे दिनके मध्याह्न-भोजनका निमन्त्रण भी मिला। आधी रातको मैं अपने स्थानपर चला गया।

३ दिसम्बरको आचार्य ओतो, अपने शिष्योंसे समुद्रतटपर जानेके लिये, विदाई लेनेवाले थे। उस दिन वह महात्मा गांधीपर बोले। मैं भी निमन्त्रित किया गया था। चार-पाँच सौ छात्र-छात्राएँ बड़ी व्याख्यान-शालामें, बैठे थे। आचार्यने महात्मा गांधीपर बहुत सुन्दर भाषण दिया। मेरे विषयमें भी कुछ कहा। मेरे व्याख्यानकी आशा भी दिलायी, किन्तु जल्दीके कारण मैं दूसरे ही दिन वहाँसे चल पड़ा; और, समयाभावसे, फिर मारबुर्ग लौटकर न जा सका। वहाँसे हम मारबुर्गके धार्मिक संग्रहालयमें गये। बौद्ध, ब्राह्मण, यहूदी, ईसाई, इस्लाम सभी धर्मोंके ग्रन्थों, मूर्त्तियों, पूजाभाण्डों, चित्रों आदिका यहाँ सुन्दर संग्रह है; और, इन संग्रहोंको उन-उन धर्मावलम्बियोंकी श्रद्धाका खयाल करके सजाया गया है।

३ दिसम्बरको मारबुर्ग विश्वविद्यालयके संस्कृतके प्रोफेसर डाक्टर नोबल्से मिलने गया। वह "सुवर्णप्रभाससूत्र" (एक

बौद्ध ग्रन्थ) का, अनेक, पाठ-भेदोके साथ, सुन्दर संस्करण निकालने जा रहे हैं।

उसी दिन फ्रांकफुर्तसे टेलीफोन आया और मुझे फ्रांकफुर्त लौट आना पड़ा। आज वसु महाशयका "भारतमित्रसभा"में भाषण था। मुझे भी कुछ शब्द कहनेको कहा गया।

यहीं महाबोधिके ट्रस्टियोंका पत्र मिला। उन्होंने मेरे शीघ्र लौटनेके इरादेपर खेद प्रकट किया था; और, लिखा था कि, "आप जाड़ेभर यूरोपमे रहकर फिर अमेरिका होते हुए लौटे।" मैने अस्वीकृतिका पत्र लिख दिया।

फ्रांकफुर्तका विश्वविद्यालय जर्मनीके प्रसिद्ध विश्वविद्यालयोंमें है। अर्थशास्त्र और समाज-शास्त्रमे विशेष ख्याति रखता है। यहाँ चार हजारसे अधिक विद्यार्थी पढ़ते है! जर्मनीमें आठ वर्ष-की शिक्षा, सभी लड़के-लड़कियोके लिये, अनिवार्य है। चार वर्ष वह प्राथमिक श्रेणीमें पढ़ते हैं, फिर माध्यमिक श्रेणीमें, ऊपरकी पाँच वर्षकी, पढ़ाई ऐच्छिक है। इस प्रकार १३ वर्षमे माध्यमिक शिक्षा या मैट्रिक्युलेशन परीक्षा समाप्त होती है, जिसमे ६ वर्षसे १९ वर्षकी उम्रतकका समय लगता है। फिर तीन वर्षतक विश्व-विद्यालयमे, अधिकारीके तौरपर, पढ़ना होता है। इसके बाद दो वर्ष Ph. D. में लगता है। हमारे यहाँकी भाँति वहाँ बी० ए०, एम० ए० की डिग्रियाँ नहीं है। भारतके किसी विश्वविद्यालयकी डिग्री वहाँ अत्यावश्यक नहीं है। विद्यार्थीको एक छोटा-सा निबन्ध

लिखनेको कहा जाता है, जिससे उसके उस विषयके साधारण ज्ञानका परिचय मिल जाता है। फिर वह तीन या चार सेमिस्टर या डेढ़-दो वर्षमे अपने PH. D का निबन्ध दे सकता है। निबन्धको प्रोफेसर लोग एक दो बार कुछ और संशोधन करनेके लिये लौटाते है, फिर स्वीकृत हो जानेपर भी तबतक उपाधि नहीं मिल सकती, जबतक कि, निबन्धको छपवाकर उसकी ढाई सौ कापियॉ अपने विश्वविद्यालयको नहीं दिया जाता। निबन्धके छपवानेका ऐसा ही कड़ा नियम फ्रांसमें भी है। अच्छे योग्य आदमीके लिये, निबन्धके समयको, यदि प्रोफेसर चाहे, तो और भी कम कर सकते है।

११ दिसम्बरको फ्रांकफुर्त नगरका पुराना भाग देखने गये। मेरे साथ इन्द्रजीके अतिरिक्त उनके गृहपति श्रीयुत् बोमान् भी थे। बोमान् महाशय जर्मन हैं। उनकी स्त्री एक अमेरिकन हैं। पहले वह बहुत धनी स्त्री थीं। राज-महलकेसे सुन्दर मकानमे, कितने ही नौकरोंके साथ, रहती थीं, बैंकमे बहुत-सा रुपया जमा था। १९२५-२६ ई०में जर्मन सिक्केका मोल गिर गया; और, मार्क (जो आज एक रुपयेके बराबर है) का दाम चौथाई पैसेके भी बराबर नहीं रह गया! उसी समय, जर्मनीके और धनिकोंकी भॉति, इनका भी नकद रुपया स्वाहा हो गया! रह गया मकान, जिसके ८-९ कमरोंको किरायेपर देकर आजकल दोनो दम्पती गुजारा कर रहे है। खैर। हमलोग पुरानी बस्तीमे पहले उस मकानको देखने गये, जिसमे महाकवि गेटे पैदा हुए थे। उनकी

स्मृतिकी सारी चीजोंका इसमे एक अच्छा संग्रहालय है। पासमें उस काफीकी दूकानको भी दिखलाया गया, जिसमे कवि अक्सर चाय पिया करते थे। यह भाग बनारसकी पुरानी गलियोका स्मरण दिलाता है, विशेषतः पॉच-अंगुली-गली (Funf finger gasse), जो ठीक कचौड़ीगली और ब्रह्मनालकी गलियोका नमूना है। एक छोटेसे ऑगनसे (जोकि, हथेली-सा है) पॉच पतली गलियाँ पॉचो ओरको गयी है। शहर देखनेको माइन् (Main) नदीके किनारेसे लौटे। नगर नदीके दोनो ओर बसा है। नदीके तटकी सड़कपर देखा, जगह-जगह हजारो देवदारकी हरी डालियॉ, क्रिसमस्के त्योहारके लिये, विक्रयार्थ रखी हुई है। एक बजे दिनको भी ठंढकके मारे नाक-कान लाल और हाथ ठिठुर रहे थे!

शामको मारबुर्ग विश्वविद्यालयके धर्म-विभागके अध्यक्ष डाक्टर हेनरिख् फ्रिक आये। धर्मोके भविष्यपर वार्तालाप हुआ। उन्होने कहा—"भूतकालमे एक दूसरेका खण्डन करने आदिकी जो धर्मोकी नीति रही है, उसे हमें छोड़ना चाहिये। हमें एक दूसरेके भावोको श्रद्धापूर्वक जाननेकी कोशिश करनी चाहिये।" मैने कहा—"उससे भी अधिक आवश्यकता इसकी है कि, धर्म खामखाह सभी बातोमे दखल न दे। किसी भी नये तरीकेको (जो मनुष्यजातिकी आर्थिक या सामाजिक कठिनाइयोको दूर करनेका भाव अपनेमे रखता है) पूरा मौका देना चाहिये। झट से काफिर और नास्तिक कहकर उसे न दबाना चाहिये।" उन्होने
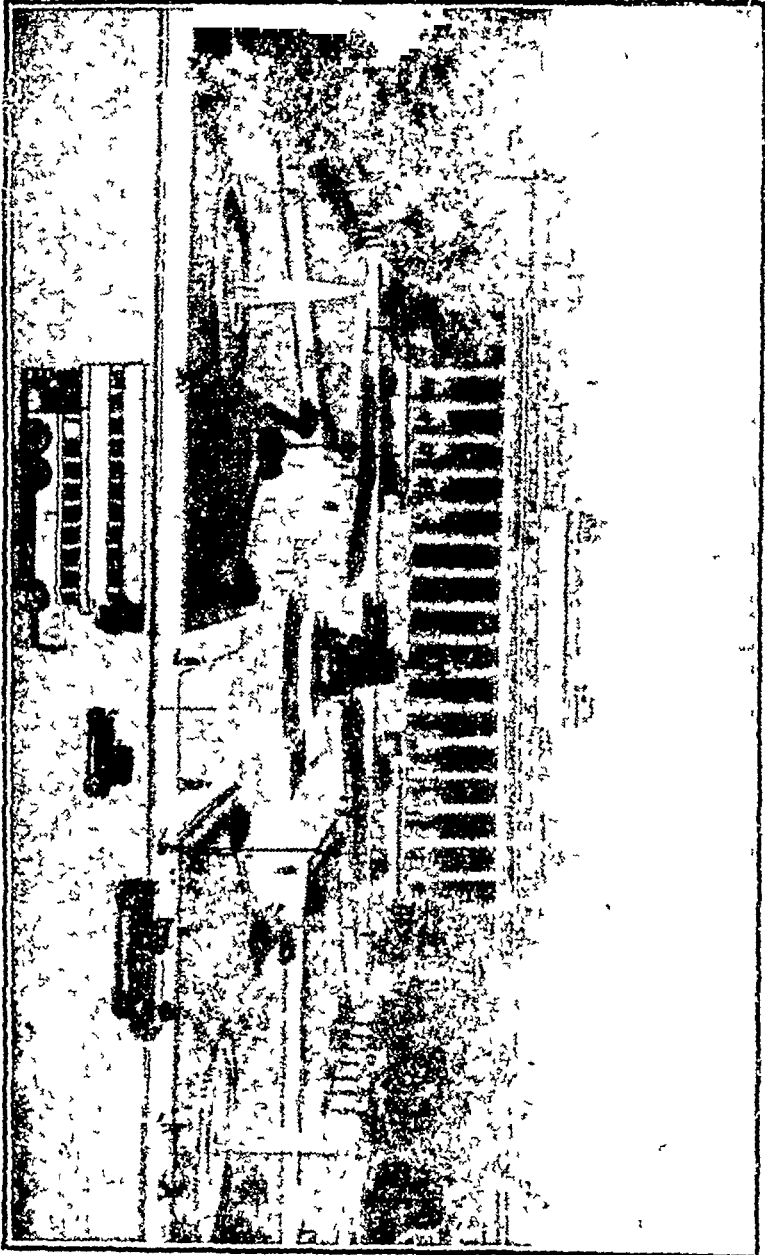
बर्लिन—पुराण म्युजियम्

बर्लिन—कैसर फ्रेड्रिक् म्युजियम्
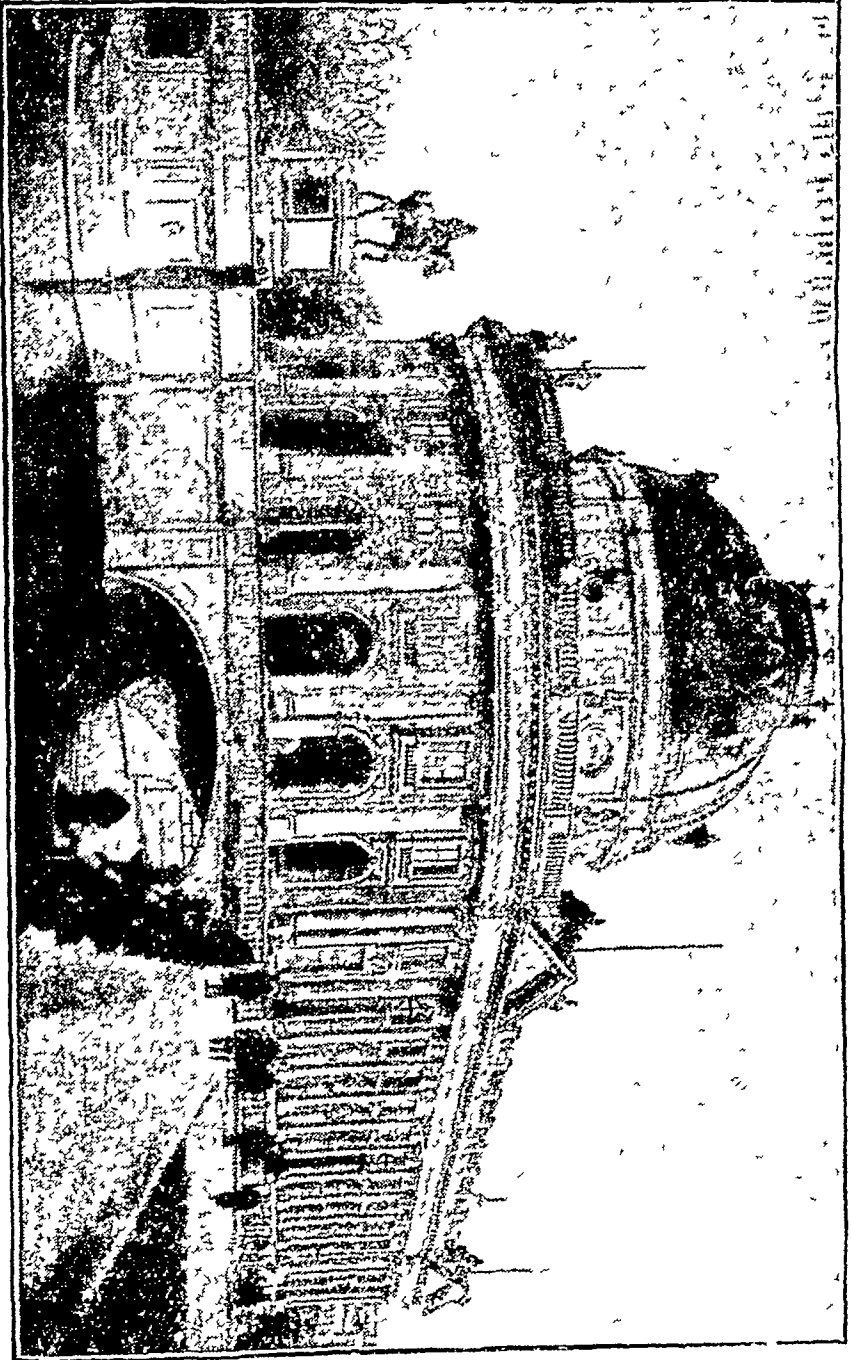
इस बातसे अपनी सहमति प्रकट कर कहा—"जर्मनीमे, आरम्भिक दिनोमे, समाजवादियोके साथ, ईसाई पुरोहितोने ऐसा ही बर्ताव कर अधिकांश श्रमजीवियोको अपना शत्रु बना लिया।" उन्होने यह भी कहा कि, "कुछ वर्षोंसे मारबुर्गमे हमने दूसरे देशोके विश्वविद्यालयोके धर्मशास्त्रके विद्यार्थियोको लेना और अपने यहॉके विद्यार्थियोको वहॉ भेजना शुरू किया है। यह क्रम बहुत ही सफल हुआ है। अब हम चाहते हैं कि, इस क्रमको ईसाई दुनियातक ही न परिसीमित रखकर अन्य धर्मोंतक भी जारी करना चाहिये। हम चाहते हैं कि, हमारे विद्यार्थी पूर्वके बौद्ध-विश्वविद्यालयोमे पढ़ने जायॅ और वहॉके विद्यार्थी हमारे यहॉ आवे।"

१० दिसम्बरको बौद्धधर्मपर मेरा एक व्याख्यान हुआ। श्रीयुत सी० टी० स्ट्रास दुभाषिये थे। ८० वर्षकी उम्र है, लेकिन खूब मजबूत है। प्रायः चालीस वर्षसे बौद्ध है।

डेढ़ सप्ताहतक फ्रांकफुर्तमे श्रीयुत इन्द्रबहादुरजीके साथ रहा। मालूम नहीं हुआ कि, विदेशमे हूॅ।

❀ ❀ ❀

१२ दिसम्बरको फ्रांकफुर्तसे मै बर्लिनके लिये, तीसरे दर्जेमे, रवाना हुआ। २४ मार्क (२४ रुपये) टिकटका दाम और प्रायः ९ घंटोका सफर था। यूरोपमे सभी जगह रेलोंका किराया हमारे यहॉसे अधिक है। वहॉ एक चौथा दर्जा भी होता है। हमारे

यहाँका तीसरा दर्जा भी वस्तुतः चौथा ही दर्जा है। चौथा दर्जा मालूम न हो; इसलिये तीसरे दर्जेका नाम ड्योढ़ा रख दिया गया है। १३ को, सात बजे, जब बर्लिनके अन्टेर्-हाल्ट स्टेशनपर उतरा, तब वहाँ हेर औस्टेर और कुमारी वेर्था दाल्के मिलीं। उनके साथ मोटरसे स्टेरिना-वान्-होफ और वहाँसे, बिजलीवाली रेलसे, फ्रोनो गया, जहाँपर महान् जर्मन विचारक और ग्रन्थकार स्वर्गीय डाक्टर पाउल् दाल्केका बौद्धगेह है। सड़कपर साँचीके द्वारकी छोटी-सी नकलका पाषाणद्वार था। सीढ़ियों, मकानों, मूर्त्तियों, सभीको डा० दाल्केने, खास बौद्ध अर्थोंके साथ, बनवाया था। मकान एक छोटेसे मिट्टीके स्वाभाविक पहाड़पर बने हैं। सीढ़ियोंमें बुद्धकी शिक्षाके आर्य-अष्टाङ्गिक मार्गको चित्रित किया गया है। यह शान्त और एकान्त स्थान देवदारके वृक्षोंके बीच, कई एकड़ भूमिमें, है। १६, १७ कोठरियाँ और कमरे, रहने और ध्यान करनेके लिये, बने हैं। यद्यपि डाक्टर दाल्केकी असली कृति उनके ग्रन्थ हैं; किन्तु यह भी उनके भावोंका साकार नमूना है। मृत्युसे चालीस वर्ष पूर्व उन्हें बुद्धकी शिक्षासे परिचय हुआ और उनकी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। उन्होंने दर्जनों ग्रन्थ, जर्मन भाषामें लिखे, जिनमेंसे बहुतसे अंग्रेजी, जापानी आदि भाषाओंमें भी अनुवादित हो चुके हैं। वह अपने इस "बुद्धिस्टिशे हौस"को चाहते थे। पश्चिममें बौद्धधर्मका एक केन्द्र बनाना, और, इसे तथा इसी प्रकारके उत्तरी सागरके एक द्वीपपर बनवाये अपने मकानको, इसी कामके लिये, अर्पण कर देना! मृत्यु इतनी

अचानक आ गयी कि, वह इसके विषयमें कोई लिखा-पढ़ी न कर सके, और, अब स्थान उनकी बहनों तथा भाईकी स्त्री और लड़कोंकी सम्पत्ति है। यद्यपि दाल्के-परिवारके सभी लोग सज्जन हैं; तो भी यह इतने धनी नहीं कि, इस सम्पत्तिको दान कर सकें। वर्माके भदन्त उत्तम स्थविर इसे खरीद लेना चाहते हैं। यदि, ऐसा हो जाय, तो पश्चिमके एक अद्भुत बौद्ध-विचारककी कीर्ति सुरक्षित हो जाय।

२३ से २५ दिसम्बर तक मेरा यहीं अधिक रहना हुआ। यहाँ उस समय जापानी भिक्षु सकाकिबारा रहते थे। आजतक जितने भी जापानी बौद्धों और भिक्षुओंसे मुझे मिलनेका अवसर मिला, सभीने मुझपर गहरा प्रभाव डाला; और, उनसे मेरी घनिष्ठता हो गयी। जापानने जैसे और बातोंमें तरक्की की है, वैसे ही वहाँके बौद्धमठों और साधुओंने भी की है। सभी सम्प्रदायोंके भिक्षुओंमें दर्जनों जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैंडके विश्वविद्यालयोंसे उच्च शिक्षा और उपाधियाँ प्राप्त किये मिलेंगे। डाक्टर बुन्-ज्यो, तकाकुसू, वत्-नबे, उई आदि कितने ही इसके उदाहरण हैं। भिक्षु सकाकिबारा भी पढ़नेके लिये आये हुए हैं।

यूरोपसे लौटनेके पहले रूस देखनेकी मेरी बड़ी इच्छा थी। डाक्टर चिरवास्की और दूसरे बौद्धधर्म एवम् दर्शनके प्रकाण्ड विद्वानोंसे मिलनेके अतिरिक्त नये रूसके निर्माण-कार्यको भी मैं देखना चाहता था। पेरिसमें मैंने रूसी वीसा लेनेकी कोशिश

की। मालूम हुआ, उसमें डेढ़ मास लगेगा। रूसी यात्रा एजेंसीने जल्दी प्रबन्ध करनेका बचन दिया; किन्तु वह ४० रुपये रोज, खर्चके लिये, मांगती थी। वहीं मालूम हुआ कि, बर्लिनमें शायद कोई प्रबन्ध आसानीसे हो जाय। यहाँ आकर इसके लिये कोशिश करनी थी। एक मित्रने एक भारतीय साम्यवादीको पत्र लिख दिया था। मैं उनके यहाँ गया। वह उस वक्त दूसरी जगह थे। फोनसे बात शुरू हुई। मैंने सब कहकर यह भी कह दिया कि, "मेरे पास समय थोड़ा है और फ़ोनोसे रोज-रोज नहीं आ सकता, इसलिये आप आज जरूर मुझसे बात करें।" बहुत कहने-सुननेपर उन्होंने, तीन घंटे बाद, एक चायखानेमें मिलनेके लिये कहा। पहले तो मैंने समझा कि, इन तीन घंटोको, एक दूसरे सज्जनके यहाँ बिता लूँगा, किन्तु संयोगवश वह भी उस समय अपने घरपर न थे! लाचार, उसी चायखानेमें ढाई घंटे पहलेसे ही डटना पड़ा। बेकार ढाई घंटेकी इन्तजारी; तिसपर सारा हाल सिगार-सिगरेटके धुवेसे भरा! एक कोनेमे बैठे रहने-पर भी लोगोंकी नजर मेरे पीले कपड़ोंपर पड़ा करती थी! गर्ज यह कि, किसी तरह, ढाई घंटेको मुश्किलसे बिताया। १०, १५ मिनट और इन्तजार करनेपर उक्त सज्जनकी सहकारिणी लड़की-ने आकर कहा कि, "महाशय···को आज काम बहुत है। आप चार दिन बाद आवे!" इस बातको सुनकर मेरे मनकी अवस्थाके बारेमें कुछ न पूछिये। धनिको और बड़े आदमियोके परिचयसे मै हमेशासे ही घृणा करता रहा हूँ, उनके व्यक्तित्वसे नहीं।

ऐसा एक ही अवसर पहले भी मिला था। बोधगयाके मन्दिरका प्रबन्ध बौद्धोंके हाथमें आना चाहिये, इस विषयका प्रस्ताव मैंने विहारप्रान्तीय कांग्रेस कमिटीसे, १९२२ ई० मे, पास कराया था। उसी साल गया कांग्रेसमे भी यह प्रस्ताव रखा जानेवाला था। श्रद्धेय श्रीयुत राजेन्द्रप्रसाद और श्रीयुत ब्रजकिशोरप्रसाद कांग्रेसके सभापति देशबन्धु दाससे मिलकर आये थे। वहाँ बोधगयाके मन्दिरके विषयमे भी बात चली थी। देशबन्धुने बड़ी सहानुभूति दिखलायी थी। आकर उन्होने मुझसे कहा कि, "देशबन्धुसे मिलिये, हम लोग बात कर आये है।" यदि उनकी अधिक प्रेरणा न हुई होती, तो मै हर्गिज वहाँ नही जाता। जाकर मैने सूचना दी। मुझे बैठनेके लिये कह दिया गया। तीन घंटों-तक मै बैठा रहा। बीच-बीचमे खबर दी और उन्होने खुद भी देखा, किन्तु एक काली कमलीवाले (तब) साधारण साधुका इतने बड़े आदमीको खयाल ही कैसे हो सकता था! तीन घंटोंके बाद मै उठकर चला आया। मुझे अपने ही ऊपर क्रोध आया कि, मैने अपनी नीतिको बदलकर बड़े आदमीसे मिलनेकी इच्छाको अपने मनमे जगह ही क्यो दी! सारे जीवनके लिये, उस समय, मुझे एक अच्छा पाठ पढ़नेको मिल गया था; फिर नये पाठकी आवश्यकता नही थी। यूरोपमे आनेपर समयकी पाबन्दी आदि-का जो गुण मैंने अन्य यूरोपीय सज्जनोमे देखा, उसीके भरोसे मैं उक्त साम्यवादी सज्जनसे भी आशा कर बैठा था। अच्छा ही हुआ, दस वर्ष बाद एक और अच्छी शिक्षा मिली! पीछे, मेरे

एक दूसरे परिचित मित्रसे; उन्होने आनेके लिये कहला भेजा, किन्तु मैंने कहा, "काफी हो गया है।"

जिस समय उक्त घटनासे मेरा मन खिन्न था, उसी समय पता लगा कि, श्रीयुत रामचन्द्र सिंह आज ही बाहरसे बर्लिन लौटे हैं। आचार्य नरेन्द्रदेव, मैं और रामचन्द्रजी, तीनो एक बार गंगा-तटपर बाबू शिवप्रसाद गुप्त (काशी)के यहाँ सोये हुए थे। उस समय रामचन्द्रजी जर्मनी जानेकी तैयारी कर रहे थे। सो, फोनसे सूचना देकर मै अपने जर्मन मित्रके साथ वहाँ पहुँचा। बड़े तपाकसे मिले। वहीं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कमला देवीको भी देखा। रामचन्द्रजी लखनऊके रहनेवाले हैं; और, कमलाजीके पिता पटनामे रहते हैं। पहलेके बर्तावसे जितना ही चित्त दुखित हुआ था, उतना ही, इस समागमसे, आनन्दित हुआ। बात-चीत ४-५ घंटेसे कममें खतम होनेवाली न थी, इसलिये रामचन्द्रजीने कहा कि, मै आखिरी रेल परिवर्तनतक पहुँचा दूँगा।" इस प्रकार मैंने जर्मन मित्रको भेजकर वार्तालाप शुरू किया। रामचन्द्रजी प्रोफेसर आइंस्टाइनके आधीन भौतिक शास्त्रका अध्ययन कर रहे हैं। ५, ६ मासमे उनकी डिग्रीका काम तो समाप्त हो जायगा, किन्तु कमलाजीकी शिक्षाके लिये थोड़े दिन और ठहरना चाहते है। यहाँ आनेसे पहले कमलाजी सिर्फ थोड़ीसी हिन्दी जानती थी। अब जर्मन तो खूब बोलती हैं; किन्तु अँग्रेजी अब भी नहीं जानतीं! साधारण ज्ञान भी उनका बहुत बढ़ गया है, और, क्रियात्मक अध्ययनका अवसर मिलनेसे स्त्रीजाति सम्बन्धिनी

समस्याओंपर उनका बहुत अधिक अनुशीलन हो रहा है। मैंने हँसते हुए कहा—"बड़ा ही अच्छा होगा, यदि कमला देवीको यहाँसे लौटनेपर अँग्रेजीका एक शब्द न आवे!" अँग्रेजी भाषाका जानना, तो भारतमे विद्वत्ताका आवश्यक अंग समझा जाता है!

दो तीन जंकशनोंपर गाड़ी बदलकर हमे अन्तिम गाड़ीपर—जो कि, सीधे फ्रोनो जाती थी—चढ़ाकर रामचन्द्रजी लौट गये। रूस-यात्राके सम्बन्धमे पूछ-ताछ करना उन्हींके जिम्मे छोड़ दिया।

१६ दिसम्बरको रामचन्द्रजीसे मालूम हुआ कि, २८ जनवरी तक यदि रहे, तो रूस-यात्राका सस्ता प्रबन्ध हो सकता है। यद्यपि अब मै यात्राके विचारको छोड़ चुका था, तो भी प्रोफेसर सिल्वे लेवीके परिचय-पत्रके साथ एक पत्र डा० ओल्डेन-बर्ग और एक पत्र डाक्टर चिरवास्कीके पास भेज दिया गया।

२२ दिसम्बरको सीमेन्स कम्पनीके कारखानेको देखनेको खास तौरसे, उन्होने अनुमति माँग ली थी। दोपहर बाद श्रीमती कमला, रामचन्द्रजी और मै वहाँ पहुचे। इस कारखानेका एक शहर ही बसा हुआ है? दो वर्ष पूर्व यहाँ एक लाख बीस हजार आदमी काम करते थे, आज कल भी अस्सी हजार काम करने-वाले है। इसके विषयमे किसी वक्त एक अलग ही लेख लिखूँगा; अतः बिलकुल संक्षेपमे ही कहना है। यह बिजलीका सामान बनानेवाला दुनियाका सबसे बड़ा कारखाना है। करीब सौ वर्ष

पहले यह कारखाना एक छोटेसे रूपमे आरम्भ हुआ। इसके संस्थापक स्वयं तार-यन्त्रके आविष्कारकोंमें थे। इन दिनो हवाई जहाज, मोटर, फोटो केमरा आदि हजारों चीजे यहाँ बनती है। कारखानेमें ५१ सैकड़ा हिस्सा संस्थापकके परिवारका ही है। हम लोगोके आफिसमें पहुँचनेपर प्रबन्ध-विभागके एक खास सज्जन अपनी मोटरपर बैठाकर हमे कारखाना दिखलाने ले चले। अन्य जगहोको दिखलाते हुए उस जगह ले गये, जहाँ एक-एक लाख वोल्ट शक्तिके विद्युत्-यन्त्रोकी कृत्रिम वर्षा और विद्युत्-कड़कमें परीक्षा होती है! छोटेसे मनुष्यके दिमागमें कितनी अद्भुत शक्ति है!! कारखानोके बाद श्रमिकोंके निवास-स्थानो तथा उनके बालकों-की शिक्षा आदि-सम्बन्धी संस्थाओंको भी दिखाया गया। रातको हम लोग लौटे।

रामचन्द्रजीकी बाड़ीवाली एक धनी जर्मन जेनरलकी लड़की हैं। १९२५-२६ मे इनका भी बैकमें रखा सारा रुपया कौड़ीका तीन हो गया! आज कुछ कोठरियोंको किरायेपर लेकर और अपनी ओरसे उन्हे भाड़ेपर देकर गुजारा कर रही हैं!

२३ दिसम्बरको हम तीनो बर्लिनके संग्रहालयोको देखने निकले। पहले फोल्केर्कुण्डे (Volkerkunde) मे गये। एशि-याई विभागके क्युरेटरने एक दूसरे विद्वान्‌को मध्य एशियासे लाये ला-कोक् संग्रहको हमे दिखलानेके लिये दे दिया। भली भाँति देखा, चित्त प्रसन्न हो गया। संग्रह तो महत्वपूर्ण है ही, संगृहीत
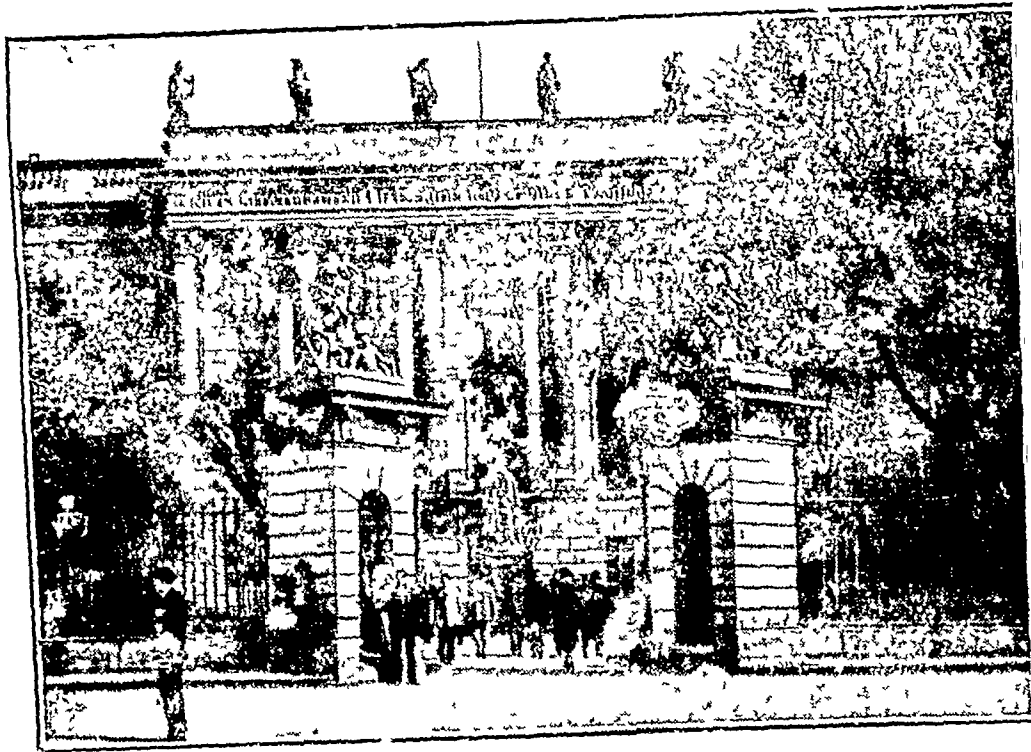
बर्लिन—युनिवर्सिटी
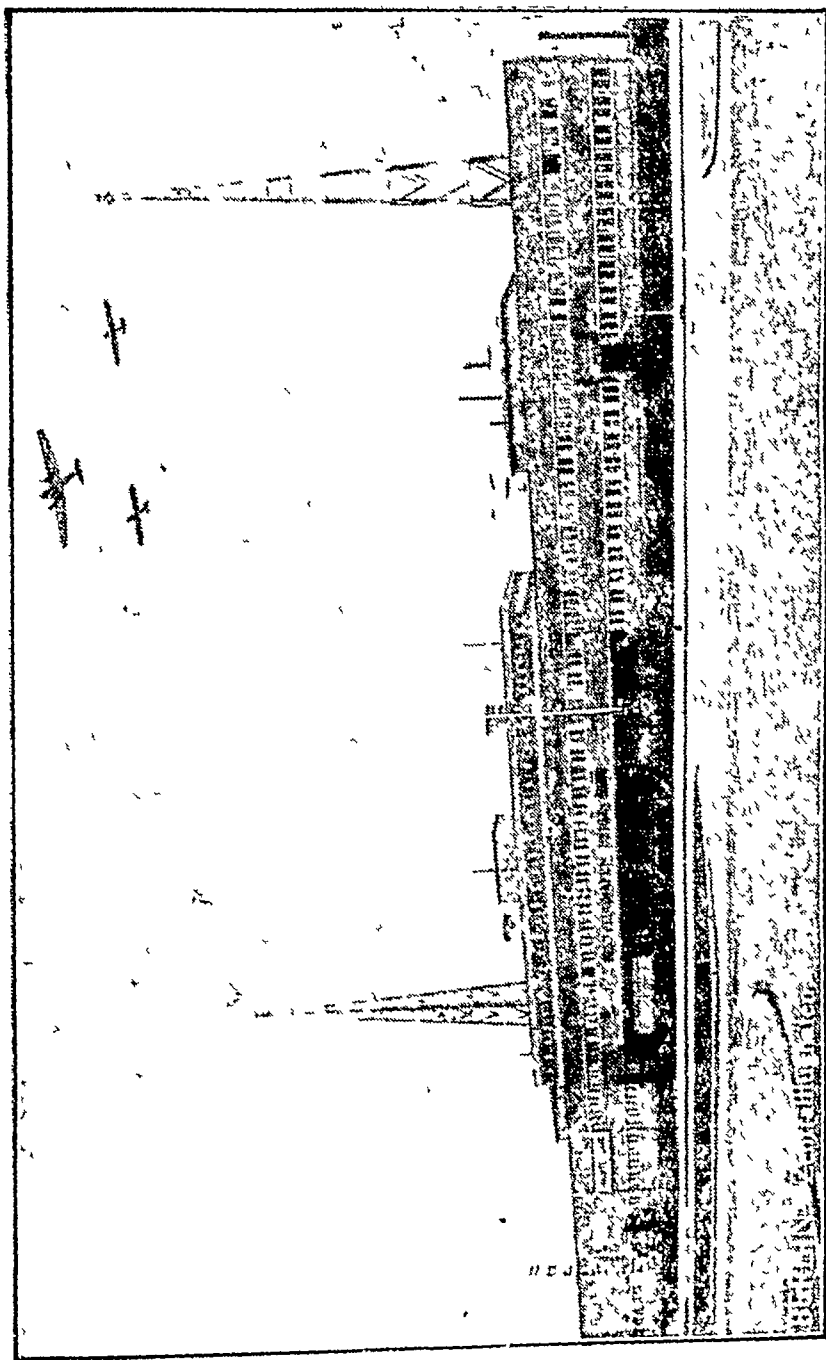
वर्लिन—हवाई जहाजो का अड्डा

वस्तुओंको सजानेका ढंग भी बहुत ही सुन्दर है। ब्रिटिश म्युजियमसे पेरिसके म्युजियमोकी सजावटका ढंग सुन्दर है। उनसे भी सुन्दर यहाँका ढंग है। मध्य एशियाकी मरुभूमिसे लाये नकशों और भित्तिचित्रोंके सहारे तीन-चार वैसे ही मन्दिर बना दिये गये है। इस एक संग्रहालयको ही देखनेके लिये दो-तीन दिन चाहिये। पुराण-म्युजियम आदिको देखकर उस दिन हम फ्रोन लौट गये।

यूरोपमे सभी प्रधान-प्रधान शहरोसे हवाई जहाज एक दूसरी जगहको उड़ते हैं। नकशोमे उनकी लाइने, आने-जानेका टाइम टेबल, मुसाफिरखाना आदि सबका, रेलोकी तरह, इन्तजाम है। एक दिन श्रीयुत रामचन्द्रके साथ मै बर्लिनका वैमानिक स्टेशन देखने गया। देखा, एक विशाल मैदानके एक किनारेपर विशाल गृह बने हुए है, जहाँ विश्रामगृह, भोजनालय आदि सभीकी अलग-अलग शालाएँ (Salle) हैं। एक बड़े हालके भीतर बीसो छोटे-बड़े हवाई जहाज रखे हुए है। अवकाश न होनेसे कुछ जहाज बाहर, मैदानमे, पड़े थे। इनमे कुछ माल ढोनेके भी थे। रातका वक्त था। उस वक्ततक विमानोंका आना-जाना समाप्त हो चुका था। मैदानमे बहुत दूरतक लाल-लाल रोशनियाँ लगी हुई थी। एक नवयुवकने बड़ी भद्रतापूर्वक ले जाकर हमे सभी चीजोको दिखलाया। बर्लिन विद्याका केन्द्र है। यहाँके विश्वविद्यालयमे बीस हजार विद्यार्थी पढ़ते है।

२४ दिसम्बरको क्रिस्मस् त्योहारकी सन्ध्या थी। उत्सव आजसे ही आरम्भ था। दाल्के-परिवारका क्रिस्मस् देखने मै भी

गया। देखा, घरके एक कोनेमें देवदारकी एक हरी शाखा, छोटे वृक्षके रूपमें, खड़ी है, जिसकी टहनियोंमे छोटी-बड़ी फुलझड़ियाँ, चमकीले लट्टू और विद्युत्प्रदीप लटक रहे हैं। लड़के फुलझड़ियोंमें आग लगाकर तमाशा देख रहे थे। फुलझड़ियोंके बाद भेंटोंका मुलाहिजा शुरू हुआ। १४ वर्षके तरुण दाल्केके मित्रों और सम्बन्धियोंने बहुतसी भेंटे उसके लिये भेजी थीं, जिनमें कोट, पतलून, टोपी, मिठाई, फांउटेनपेन, डाकखानेके टिकटोंका संग्रह और उसकी कापी तथा और कितनी ही चीजें थीं। उनमें एक हथौड़ी भी थी, जिसके खोखले हैंडलमें छोटे-बड़े अनेक पेचकश, आरी, रेती आदि चीजे थीं। उनके मामा भी वहाँ आये हुए थे। वह अपनी बहनके लिये एक समूरी कोट लाये थे। इसी तरह अन्य व्यक्तियोकी भी भेंटें थीं। घरवालोंने भी एक दूसरेकी भेंटे प्रदान कीं। फिर मिठाइयोका भोज और चायका पान शुरू हुआ। पीछे बातें हुईं। मैंने पूछा—"ईसाई होनेसे पूर्व जर्मन लोगोके कौनसे बड़े त्योहार थे?" उत्तर मिला "सोन्-वेन्दे (Sonn-wende) वर्षके उन दो दिनोंमे, जब कि सूर्य विषुवत् रेखासे उत्तर और दक्षिण जाता था अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायन।" इनमें पुराने भारतीय आर्योंके पर्वोकी समानतासे आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं; क्योकि दो सौ पीढ़ियोंके पूर्व दोनों जातियोंके पूर्वज एक ही थे। फर्क इतना ही रहा कि, जहाँ भारतीय हिन्दू आर्योंके दिमागसे निकले धर्मों और परम्पराओंपर अधिक आरुढ़ रहे (जिससे

नाक, रंग, क़दका अधिकांश खोकर भी वह अपने पूर्वजोंके पर्वों, उत्सवों और इतिहासोंकी बहुतसी बाते कायम रख सके), वहाँ यूरोपीय आर्योंने ईसाई धर्मको स्वीकार कर लिया। यद्यपि ईसा-की शिक्षामें सेमेटिक अनुदारताकी गन्धतक नहीं है, तो भी उसे यहूदियोंकी अनुदार सेमेटिक परम्पराने इतना जकड़ दिया था कि, उसने आर्योंकी प्राचीन कितनी ही सुन्दर बातोंका नष्ट कर डालना, अपने धर्मके प्रचारके लिये, अत्यावश्यक समझा!

× × ×

सभी देश इस समय बड़ी आर्थिक कठिनाइयोमे पड़े हुए हैं; और, उद्योग-धन्धोमे प्रधान देश तो और भी। जर्मनीकी अवस्था तो और भी खराब हो गयी होती, यदि वह इंग्लैंडकी भाँति कृषि-को बिलकुल जवाब दे चुका होता। जर्मनीमे मैं रेलके स्टेशनोंके बाहर और सड़कोपर भी लोगोको टोपी उतारकर भीख माँगते देखता था। मैंने पूछा—"जब यहाँ भीख माँगनेके खिलाफ कड़ा कानून है, तब यह ऐसा क्यों करते हैं?" उत्तर मिला—"कानून मनवानेका मतलब है; जेल भेजना। फिर वहाँ भी तो खाना देना पड़ेगा।"

जनसत्ताक साम्यवादियोंकी प्रतीक्षासे ऊबकर इधर नाजीदल-से जनता अधिक आशा करने लगी थी, किन्तु स्वर्गसुखकी आशाको जल्दी समीप आते न देखकर कुछ उदासीन होने लगी। पिछले चुनावमे नाजियोंके सदस्योंकी संख्या कम होनेसे इधर कितने ही धनिकोंने नाजियोंको आर्थिक सहायता देनी बन्द कर

दी है। जगह-जगह भूरी वर्दी पहने हिटलरके नाजी, अपने दलके लिये, चन्दा माँगते देखे जाते हैं ! लोग कहते हैं, "यदि नाजीदल-ने, निकट भविष्यमे, कोई सफलता न दिखलायी, तो उसका सितारा अस्त होने जा रहा है !"

२५ दिसम्बरको ६२ मार्क (६२ रुपये) देकर हमने मार्सेइ (मार्सेल्) का टिकट लिया। ३० दिसम्बरको ही फेलिस् रूसेल् जहाज रवाना होनेवाला था। आखिर रूस जाना भी नहीं हो सका। यदि पहले मालूम होता कि, जाना न हो सकेगा, तो इन डेढ़ महीनोंमें जर्मनीके और नगरों एवम् आस्ट्रिया, इटाली और स्वीजलैंड भी हो आया होता। जर्मनीके कई मित्रों और स्वीजलैंड की देवी फ्रोबे काप्तेन्को भी मुझे हताश करना पड़ा। देवीजीके यहाँ जानेकी तो मैं अन्तिम दिनतक आशा दिलाता रहा।

ट्रेन बर्लिन्से सबेरे ही चली। मेरे डब्बेमें एक जर्मन महिला बैठी थीं। उनके कोटमे लगे तीन वाणोंवाले बिल्लेको देखकर मैं समझ गया, यह सोशल्डमोक्रेट (जनसत्ताक साम्यवादी) या नरम साम्यवादी दलकी सदस्या हैं। यह अँग्रेजी भी जानती थीं। इन्होंने जर्मनीमे साम्यवादकी सफलता न होनेका सारा दोष कम्युनिस्टोपर मढ़ा। लेकिन कम्युनिस्ट कहते है—हंगरी, जर्मनी, दोनोमें साम्यवादके सफल न होनेके कारण जनसत्ताक साम्य वादियोंकी नीति निर्जीव हुई। जिस वक्त लोगोका उनपर विश्वास था और सारी शक्ति उनके हाथमें थी, उस समय उन्होने पूँजी-वादियोकी व्यक्तिगत सम्पति आदिको यह कहकर नष्ट नहीं

करना चाहा कि, धीरे-धीरे समझा-बुझाकर यह काम किया जा सकेगा। क्या जरूरत है समाजमें एकदम क्रान्ति पैदा करनेकी? जनताके लिये चार-छः वर्ष प्रतीक्षा करना बहुत है। वह हमेशा अपने कष्टोंको, तुम्हारे कयामतके बाद मिलनेवाले सुखोंकी आशा-में, थोड़े ही सहती रहेगी। उसी समय एच०जी० वेल्सने, विलायत-के मजदूर-पत्र "डेली-हेरल्ड" मे, नवसमाज-संगठनके साम्यवादी उद्देशोंकी एक तालिका देकर सभी उदारचेता पुरुषोंसे उसके लिये काम करनेकी अपील की थी। इसके उत्तरमे आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयके प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कोल महाशयने जो लिखा था, उसका मतलब यह था कि, महादेव बाबाकी बारात कभी किसी संग्राममें सफलता नहीं प्राप्त कर सकती! नरमदलियो, अधकचरे साम्यवादियों और शुद्ध साम्यवादियोंका सम्मिलित दल कैसे एक नये समाज और लोकका निर्माण कर सकता है, जब कि, उनके सोचने, करने आदिके ढंग एक नहीं है? उन्होंने यह भी लिखा था कि, रूसमें नवनिर्माणकी सफलताका कारण साम्यवादियोंकी एकमनस्कता और डिसिप्लन् थी, और, हंगरी तथा जर्मनीमें असफलताका कारण उनका महादेव बाबाकी बारात बनना था।

फ्रांकफुर्तमें तीन दिन रहकर हम मार्सेलको रवाना हो गये। पेरिससे भेजे तिब्बती चित्र तबतक मारबुर्ग नहीं पहुँचे थे। मैंने टामस कुकको लिखकर ठीक कर लिया था कि, आनेपर उन्हें लेकर वह पटना म्युजियमको भेज दे, जिसे मैंने अपने सभी (१४० के करीब) चित्रपट प्रदान किये है।

३० दिसम्बरकी चार बजे शामको फ्रेंच जहाज फेलिस रूसेलसे मैं लंकाके लिये रवाना हुआ।

× × ×

मेरे एक भारतीय मित्रने, जर्मनीसे, अपने ८ मार्च १९३३के पत्रमें लिखा है—'यहाँपर इन दिनो नाजियोका राज्य है। हिटलर चांसलर हो गये हैं। इस चुनावमें नाजियोंकी ही जीत रही है। साम्यवादी लोग बुरी तरह दबाये जा रहे है। लगभग दस हजार साम्यवादी जेलोमे बन्द है! उनके अखबार बन्द कर दिये गये है। व्याख्यान, सभा तथा जुलूस आदिकी स्वतन्त्रता उनसे छीन ली गयी है। वह रेडियोका प्रयोग, प्रचारके लिये, नहीं कर सकते। कई जगहोंमे नाजी पुलिस और कम्युनिस्टोमें मुठभेड़ हो गयी है। बहुत लोग हताहत हुए है! इस समयकी नाजी सरकार कम्युनिस्टोको नेस्तनाबूद करनेपर उतारू है। पुलिसको मदद करनेके लिये नाजी लोग अतिरिक्त पुलिसके तौरपर भर्ती किये गये है। जहाँ देखिये, वहीं नाजी लोग दिखाई पड़ते है। आज कल उन्हींका बोलबाला है। (सोशल) डेमोक्रेट लोग भी कम्युनिस्टोंकी तरह, उक्त हकोसे वंचित किये गये है। इन सबके होते भी आशा कम ही है।"

मेरे मित्र अर्थशास्त्रके पण्डित है; और, साम्यवादी नहीं हैं। उनका यह लिखना कि, नाजियोके यह सब कुछ करनेपर भी उनकी सफलताकी 'आशा कम ही है' खास मतलब रखता है।

पूँजीवादमे चीजोकी उत्पति सिर्फ नफेके लिये की जाती है, लोगोंकी आवश्यकताको पूरी करनेके लिये नही। इससे उलटे साम्यवाद, चीजोकी उत्पति, लोगोकी आवश्यकता पूरी करनेके लिये करता है। सारा राष्ट्र उसका परिवार है। परिवारके प्रत्येक व्यक्ति को पहननेके लिये कपड़े, खानेके लिये अन्न, रहनेके लिये मकान तथा जीवनकी दूसरी आवश्यक चीजे अपेक्षित है। साम्यवाद उन चीजोको मुहय्या करके अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझता है। उसके परिवारके सभी व्यक्तियोको काम और भागके सामान मिले, और, बस। पूँजीवादी क्या कर रहे है ? अमेरिकामे, लाखो मन गेहूँमे इसलिये आग लगायी जा रही है कि, गेहूँ कम होनेसे बचे गेहूँ का दाम अधिक मिले और व्यापारीको नफा हो, चाहे उसी मुल्कमे हजारो बेरोजगार स्त्री-पुरुष भूखो मरे! वही बात, ब्राजिलमे, काफीकी लाखो बोरियाँ समुद्रमे डुबोकर तथा कारखानो-के बने करोड़ोके मालको जला-सड़ाकर की जा रही है! बाजारमें ग्राहकोकी माँगसे अधिक माल हो जानेपर जब पूँजीपतियोके लिये नफेपर माल बेचना असम्भव हो जाता है, तब वह अपने कारखानोको बन्द कर हजारों श्रमजीवियो और पचासो हजार उनके परिवारके व्यक्तियोको भूखो मरनेके लिये बाध्य करता है! जैसे साइकिल जबतक चलती है, तभीतक वह गिरनेसे बची रह सकती है, वैसे ही पूँजीवाद भी तभी चल सकता है, जबतक उसे नफा होता रहता है। नफेके लिये बाजारकी आवश्यकता है। दुनियाके सभी बाजार मालूम हैं, उनका कोई अंश अज्ञात नहीं

है। इधर दुनियाके सभी देशोंमें नये कारखानोंकी बाढ़ आ रही है, जिसके साथ ही साथ वह अपने-अपने बाजारोंमें दूसरेका माल न आने देनेके लिये चुंगीकी दीवार और सेना बढ़ा रहे हैं। पूँजीवादके उक्त दोषोंके कारण संसारका वर्तमान अर्थसंकट उपस्थित हुआ है!

जर्मनी उद्योग-धन्धेमें बहुत आगे बढ़ा हुआ देश है। हिटलर कम्युनिस्टों और साम्यवादियोंका उच्छेद कर सकते हैं और बन्द कारखानोंको भी चालू करा सकते हैं, लेकिन फिर सवाल रहेगा—नया बाजार कहाँसे आवे, किनके ग्राहकोंका छीना जाय? जबतक इसका उपाय नहीं, तबतक अन्धे होकर कम्युनिस्टोंकी हत्या करने एवम् उससे भी पागलपनकी बात—संसारके व्यापारकी कुंजी, यहूदी जाति को सताकर, अपने रहे-सहे वैदेशिक व्यापारको भी चौपट करके, जर्मनीके लिये, अच्छे दिनोंकी आशा नहीं हो सकती। यदि जर्मनी नफेका खयाल छोड़कर अपने ४ करोड़ आदमियोंके लिये जीवनकी सभी अपेक्षित वस्तुओंको ही प्रस्तुत करनेका इरादा कर ले, तो विद्या, संगठन, शक्ति आदि द्वारा वह शीघ्र सुखी देश हो जाय। किन्तु यह साम्यवाद हो जायगा, जिसे कि, हिट्लरका नाजी दल नेस्तनाबूद करना चाहता है। बरस—दो बरस, जर्मन प्रजा हिटलरकी प्रतीक्षा जरूर करेगी; किन्तु स्थायी विजय उसी दलकी होगी, जो देशकी आर्थिक समस्याओंको, स्थायी रूपसे, हल कर सकेगा।